



आजादी के दीवाने

☆☆☆

श्रीमती सीमा द्विवेदी

एम०ए० प्राचीन इतिहास
एम०ए० समाज शास्त्र, बी०एड०
सदस्य—विधान सभा (उ०प्र०)

☆☆☆

“राजा राम मोहन राय प्रस्तुतकाल्य
श्रुतिज्ञान प्रोत्साहना के मौज्ज्य से”
शब्द भारती

इलाहाबाद

प्रकाशक .

शब्द भारती

८४, पुराना लश्कर लाइन,

इलाहाबाद-२११००३

❖❖❖

संस्करण प्रथम : २००२ ई०

❖❖❖

मूल्य : रु० १००.००

मुद्रक :

भारग्व प्रेस

११/४, बाई का बाग, इलाहाबाद - २११००३

अनुक्रम

राजा कुँवर सिंह	५
नाना साहब	१४
महारानी लक्ष्मीबाई	२०
खुदीराम बोस	३२
मदन लाल ढींगरा	३९
ऊधम सिंह	४४
यतीन्द्र नाथ मुकर्जी	५०
तरुण शहीद हेमू कलानी	६१
गेंदालाल दीक्षित	६६
श्रीविष्णु गणेश पिंगले	७४

1



राजा कुँवर सिंह

आरा (बिहार) जिले की जगदीशपुर नामक एक छोटी-सी रियासत में सन् १७८२ ई० में राजा कुँवर सिंह का जन्म हुआ था। यह रियासत इनके पूर्वजों को बादशाह शाहजहाँ ने उनकी वीरता और वफादारी से प्रसन्न होकर दी थी और साथ ही 'राजा' की उपाधि भी दी थी। कुँवर सिंह के पिता का नाम राजा शाहबाजाद सिंह था।

कुँवर सिंह बचपन से ही बहादुर थे। इनका मन पढ़ने की ओर विशेष न लगता था। ये बड़ी ही स्वतन्त्र प्रकृति के थे। लड़ाई, झगड़ा तथा वीरता के कामों में इनकी अभिरुचि थी; इसी कारण इनकी विशेष शिक्षा न हो सकी। राजा कुँवर सिंह को घोड़े पर चढ़ने का, बन्दूक चलाने का और इसी प्रकार की बहादुरी के कामों को करने का शौक था। अपने इन गुणों के कारण ये छोटी ही उम्र में विख्यात हो चले थे और आस-पास के इलाके में अत्यन्त सर्वप्रिय बन चुके थे।

सन् १८५७ के गदर के प्रभाव से बिहार भी न बच सका था। विप्लवकारी उस समय पटना में अपना आतंक बढ़ा रहे थे; नित्य गुप्त सभाएं हुआ करती थीं; उन सभाओं में वहाँ की पुलिस तक शामिल थी। जब अंग्रेजों को इस बात का पता चला तो



राजा कुंवर सिंह

उन्होंने सिक्ख सेना पटना की रक्षा के लिए भेज दी। पटना ही विप्लवकारियों का केन्द्र समझा जाता था। पटना में कुछ विप्लव हुआ, किन्तु सिक्ख सेना की सहायता से उसे दबा दिया गया। वहाँ का मुख्य नेता पीर अली था। उसको पकड़ कर फांसी दे दी गई। इसी तरह दरभंगा जिले के विप्लवकारी पुलिस के जमादार वारिस अली को संदेह कर फांसी दी गई।

विप्लव की चिंगारी दावाग्रि की भाँति बड़ी शीघ्रता से फैलती हुई दिखाई दे रही थी। कुंवर सिंह के पास भी इसकी खबर पहुँची तो वे भी व्याकुल हो उठे। वीर कव रण भेरी सुनकर सोता रह सकता है। देश की रक्षा के करने के लिए कटिबद्ध हो गये। सुनकर आश्चर्य होगा कि उस समय कुंवर सिंह की आयु ८० वर्ष की थी। उस अस्सी वर्ष के बूढ़े में बिजली की सी तड़प थी। जिस समय दानापुर की विप्लवकारी सेना जगदीशपुर पहुँची, बूढ़े कुंवर सिंह ने तुरंत अपने महल से निकल कर हथियार उठा कर इस सेना का नेतृत्व ग्रहण किया। बिहार के विप्लवकारियों में राजा कुंवर सिंह का प्रमुख स्थान था और वे उस समय के प्रबल नेता समझे जाते थे। उनकी वीरता की अनेक कहानियाँ अब तक कहीं और सुनी जाती हैं।

कुंवर सिंह विप्लवकारी सेना के साथ आरा पहुँचे, यहाँ पर इन्होंने सरकारी खजाना लूटा और जेलखाने के कैदियों को रिहा कर दिया। आरा के किले को घेर लिया, जो तीन दिन तक घिरा रहा। चौथे दिन कप्तान डनवर लगभग चार सौ सिपाही लेकर आरा की रक्षा के लिए चल दिया। आरा के पास एक आम का बाग था,

कुंवर सिंह ने अपने कुछ आदमी आम के पेड़ों पर छिपा दिए। रात का समय था। कप्तान इनवर मय अपनी सेना के उस आम के बाग से होकर गुजरा। जिस समय सेना ठीक पेड़ों के नीचे पहुंची, अंधेरे में ऊपर से दनादन गोलियां बरसने लगीं। इस तरह से कुछ समय तक गोलियों की घनघोर वर्षा करके सेना के लगभग सभी सिपाहियों का खात्मा कर दिया गया। कहा जाता है कि करीब ५० जिन्दा बच कर लौटे। कप्तान इनवर यहीं पर मारा गया। इसके बाद मेजर आयर एक बड़ी सेना लेकर आया। बीबीगंज के निकट कुंवर सिंह की सेना से मेजर की सेना का मुकाबला हुआ। पहले तो कुंवर सिंह की सेना ने बड़ी वीरता दिखाई और यह मालूम होने लगा कि मेजर की सेना के पैर उखड़ जायेंगे, किंतु थोड़े ही समय में युद्ध का रङ्ग बदल गया और कुंवर सिंह की सेना को पीछे हटना पड़ा। आठ दिन के घेरे के बाद आरा नगर तथा किला फिर से अंग्रेजों के हाथ में आ गया। कुंवर सिंह जगदीशपुर की ओर लौट आये। मेजर आयर ने सेना के साथ उनका पीछा किया। कई दिन संग्राम होने के बाद कुंवर सिंह को फिर भी हारना पड़ा। मेजर ने जगदीशपुर के महल पर कब्जा कर लिया।

बूढ़े कुंवर सिंह बारह सौ सैनिकों के साथ अपने महल की स्त्रियों को साथ लेकर जगदीशपुर से निकल पड़े। उन्होंने आजमगढ़ से पचास मील की दूरी पर अतरौलिया नामक स्थान पर डेरा जमाया। जिस समय अंग्रेजों को यह समाचार मिला, उन्होंने तुरंत मिल मैन् के अधीन कुछ सेना और दो तोपें हवाले करके कुंवर सिंह के मुकाबले को भेज दिया। अतरौलिया के मैदान में दोनों

आर का सनाओं का आमना सामना हुआ। थाड़ा ही दर बाद कुंवर सिंह अपनी सेना सहित पीछे हटने लगे। अंग्रेजी सेना समझ गई कि कुंवर सिंह हार कर मैदान से भाग गए। जीत की खुशी में मिल मैन ने अपनी सेना को एक आम के बाग में ठहर कर भोजन करने की आज्ञा दे दी। मिल मैन की सेना जब भोजन करने में लगी हुई थी, कुंवर सिंह मग अपनी सेना के उन पर अचानक टूट पड़े। थोड़ी देर के संग्राम के बाद विजय कुंवर सिंह का हुई। मिल मैन के अनेक सिपाही काम आए और बहुतों ने अतरौलिया से भाग कर कौशिला में आश्रय लिया। कुंवर सिंह ने मिल मैन का पीछा किया। मिल मैन मैदान छोड़ कर अपनी जान लेकर भागा। इस विजय में कुंवर सिंह के हाथ बहुसा सा सामान लगा और तोपे आदि भी पल्ले पड़ीं।

पीछे पता चला कि मिल मैन आजमगढ़ की ओर चला गया। मिल मैन की पराजय का समाचार जब अंग्रेजों को मिला तो उनको बहुत घबराहट पैदा हुई। मिल मैन की सहायता के लिए एक सेना बनारस से और दूसरी गाजीपुर से आजमगढ़ भेजी गई।

इधर कुंवर सिंह को भी सेनाओं के आने की खबर लग गई थी, वे भी सतर्क हो गये। अंग्रेजों की संयुक्त सेना कर्नल डेम्स के नेतृत्व में आगे बढ़ी। आजमगढ़ से कुछ दूर कुंवर सिंह और कर्नल डेम्स में युद्ध हुआ। इसमें भी कुंवर सिंह की विजय हुई। कुंवर सिंह ने आजमगढ़ में प्रवेश किया। आजमगढ़ को विजय कर वे अपनी सेना के एक दल को आजमगढ़ के किले के घेरे के लिए छोड़ कर बनारस की ओर बढ़े। इतिहास लेखक मालेसन का

कहना है कि कुंवर सिंह की विजयों और उनके बनारस पर चढ़ाई करने की खबर सुन कर लार्ड कैनिंग घबरा उठा। कैनिंग ने लार्ड मार्ककर को सेना और तोपों के साथ कुंवर सिंह के मुकाबले के लिए भेजा। लार्ड मार्ककर और कुंवर सिंह में घोर संग्राम हुआ। इतिहास लेखक का कहना है कि उस दिन ८० वर्ष के बूढ़े ने जो रण-कौशल दिखाया, उसका वर्णन करना कठिन है। एक सफेद घोड़े पर एक बूढ़ा सवार होकर ठीक घमासान लड़ाई के भीतर बिजली की तरह इधर से उधर लपकते हुए दिखाई दे रहा था। लार्ड मार्ककर की पराजय हुई, उसे अपनी तोपों सहित पीछे हटना पड़ा और वह आजमगढ़ की ओर भागा। कुंवर सिंह ने उसका पीछा किया। कुंवर सिंह ने लार्ड मार्ककर और उसकी सेना को किले में कैद कर किले पर घेरा डाल दिया।

पश्चिम की ओर से सेनापति लार्ड स्मार्ड मार्क की सहायता के लिए आजमगढ़ की ओर बढ़ा। कुंवर सिंह को इस बात का पता चला गया। कुंवर सिंह ने लेगर्ड की सेना को छकाने की सोची। वे आजमगढ़ से चल दिये। लेगर्ड की सेना तानू नदी के पुल से आजमगढ़ आने वाली थी। कुंवर साहब ने अपनी सेना का एक दल उस पुल पर लेगर्ड की सेना से मुकाबला करने को भेज दिया और अपनी शेष सेना लेकर कुंवर सिंह गाजीपुर की ओर बढ़े। यह छोटा सा दल बड़ी बहादुरी के साथ उस सेना का मुकाबला करता रहा। जब दल ने देखा कि हमारी मुख्य सेना काफी दूर निकल गई है तो उसने रास्ता छोड़ दिया और स्वयं भी वह दल अपनी सेना से जा मिला। लेगर्ड को पहले तो इस चाल का पता न चला, पीछे

से जब उसे ज्ञान हुआ तो उसने बारह मील तक कुंवर सिंह का पीछा किया, किंतु कुंवर सिंह हाथ न आ सके। इसी तरह सेनापति डगलस से नघई नामक ग्राम के निकट एक करारी मुठभेड़ हुई। इसमें भी कुंवर सिंह की विजय हुई किंतु बहुत सा सामान इनका शत्रु के हाथ लगा।

कुंवर सिंह लगातार बहुत समय तक युद्ध करते-करते कुछ थक से गये थे। कुछ समय के लिए इन्होंने विश्राम करने की सोची परंतु इन्हे विश्राम करने का मौका कहां था? इन्होंने गंगा पार करके जगदीशपुर जाने का निश्चय किया। किंतु इस तरह से गंगा पार करके जाना आसान न था। डगलस कुंवर सिंह का पीछा बराबर कर रहा था। वह इस बात की फिराक में था कि किस तरह कुंवर सिंह की ताकत कम की जाय। कुंवर सिंह ने गंगा के पास पहुंच कर यह अफवाह उड़ा दी कि मेरी सेना बलिया के पास हाथियों पर गंगा पार करेगी। अंग्रेजी सेना उसी स्थान पर जाकर कुंवर सिंह को रोकने के लिए डट गई, किंतु कुंवर सिंह उस स्थान से सात मील दक्षिण शिवपुर घाट से रात के समय नावों से पार उतर गये। अंग्रेजी सेना को जब इस चाल का पता चला तो वह शिवपुर पहुंची। कुंवर सिंह की समस्त सेना गंगा पार हो चुकी थी, केवल एक अंतिम नाव रह गयी थी; कुंवर सिंह इसी नाव में थे। ठीक जिस समय नाव बीच धारा में पहुंची, अंग्रेजी सेना के किसी सिपाही का चलाया हुआ गोला कुंवर सिंह की दाहिनी कलाई में आकर लगा। कुंवर सिंह का दाहिना हाथ बेकार हो गया। समस्त शरीर में विष फैल जाने के डर से बाये हाथ से तलवार खींच कर

अपने घायल दाहिने हाथ को स्वयं एक बार मे कुहनी से काट कर गंगा मे फेंक दिया। घाव पर कपड़ा लपेट कर कुंवर सिंह ने गंगा पार किया। अंग्रेजी सेना उस पार उनका पीछा न कर सकी। गंगा के उस पार कुछ दूरी पर जगदीशपुर राजधानी थी।

आज से आठ मास पहले जिसे अपनी भूमि को छोड़ कर चला जाना पड़ा था, उसके दर्शन करके कुंवर सिंह को अपार हर्ष हुआ। आठ महीने तक जगदीशपुर अंग्रेजों के कब्जे में रहा। भाई अमर सिंह की सहायता से कुंवर सिंह ने फिर जगदीशपुर पर कब्जा किया। आरा के अंग्रेज अफसर चकित हो गए। वे लोग इस विजय को सहन न कर सके। अभी कुंवर सिंह को जगदीशपुर विजय किये हुए २४ घण्टे ही हुए थे कि लीग्रैण्ड के अधीन एक सेना आरा से जगदीशपुर के लिए चल दी। कुंवर सिंह को आठ महीने लगातार युद्ध करते हुए बीता था; उनका दाहिना हाथ खराब हो चुका था; पास में एक हजार से अधिक सेना भी न थी। उनके मुकाबले मे लीग्रैण्ड की सेना सुसज्जित थी। तोपे भी इस सेना के साथ थी। कुंवर सिंह के पास कोई तोप न थी। जगदीशपुर से डेढ़ मील की दूरी पर लीग्रैण्ड और कुंवर सिंह की सेना में संग्राम हुआ। विजय कुंवर सिंह की हुई और बहुत सा सामान उनके हाथ लगा।

इस प्रकार सन् १८५८ ई० को विजयी राजा कुंवर सिंह फिर से अर्था रिसायत पर शासन करने लगे। इस विजय को प्रसन्नता से देखना उनके भाग्य में बदा न था। घाव अभी तक अच्छा नहीं हुआ था। २३ अप्रैल को तो जगदीशपुर में प्रसन्नता के उत्सव मनाये जा रहे थे, किन्तु २६ अप्रैल को कुंवर सिंह की

तबियत अकस्मात् खराब हुई और महल के भीतर ही उनकी मृत्यु हो गई। कुंवर सिंह की मृत्यु के समय स्वाधीनता का हरा झंडा उनकी राजधानी के ऊपर फहरा रहा था। राजा कुंवर सिंह अंग्रेजों के आधिपत्य से अपनी रियासत और प्रजा को स्वतन्त्र कर चुके थे।



नाना साहब

प्रथम भारतीय-स्वातंत्र्य युद्ध के सूत्रधार के रूप में नाना साहब का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। सन् १८५७ की क्रान्ति का श्रेय आपको ही है। जब तक आप में शक्ति रही, देश की बिखरी शक्तियों को संगठित करके, अन्त समय तक आप अंग्रेजों से मोर्चा लेते रहे और फिर भारतीय-क्रान्ति के असफल होने पर, आप ऐसे लोप हुए कि फिर कभी आप प्रकट ही नहीं हुए। इस प्रकार आप जीवन भर मोह-माया, आमोद-प्रमोद से विरक्त होकर भी जाने कहां जंगल की खाक छानते रहे।

सन् १८५६ ई० में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी का अंतिम गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी भारत पर शासन करने आया था। वह बड़े क्रूर स्वभाव का था।

इन्हीं दिनों बाजीराव द्वितीय जो पूना के पेशवा थे, राज्य से वंचित कर दिये गये और वह बिठूर में रहने लगे थे। उनके साथ महाराष्ट्रीय परिवार के माधव राव नारायण भट्ट तथा उनकी धर्मपत्नी गंगा बाई भी थीं। नाना साहब इसी दम्पति की संतान थे।

नाना साहब का जन्म सन् १८२४ में हुआ था। बाजीराव पेशवा निःसंतान थे। अतः ७ जून १८२७ को उन्होंने इस बालक को बड़े समारोह के साथ गोद ले लिया। झांसी की रानी महारानी



नाना साहब

लक्ष्माबाई और तात्या टोपे बचपन में इन्हीं नाना साहब के साथ पढ़ते-लिखते और शस्त्र संचालन की विद्या सीखते थे।

सन् १८५१ में बाजीराव द्वितीय के मरने पर लार्ड डलहौजी ने घोषणा की कि उसकी आठ लाख पेंशन में नाना साहब का कुछ भी अधिकार नहीं है। अतः नाना साहब ने अपना मामला प्रिवी कौंसिल में पेश करने के लिए अजीमुल्ला खाँ नामक अपने विश्वासी प्रतिनिधि को १८५४ में इंग्लैंड भेजा, किंतु कोई परिणाम न निकला। फलतः अजीमुल्ला खाँ ने लंदन में सतारा के प्रतिनिधि रंगो बापूजी से मिलकर सन् १८५७ की सशस्त्र क्रान्ति करने का निश्चय किया। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए बिठूर में सन् १८५६ में एक गुप्त संगठन की स्थापना की गई। नाना साहब इसके नेता बने। नाना साहब ने भारत भर में अपने प्रचारक भेजे। मैसूर और दिल्ली के बीच के सब राजाओं को क्रान्ति में सम्मिलित होने का निमंत्रण दिया गया। दिल्ली के बादशाह बहादुरशाह ने भी इसमें भाग लिया। अनेक फकीर, पंडित तथा संन्यासी जनता में और सैनिकों में स्वातंत्र्य-युद्ध का प्रचार बड़े संगठित रूप से करने लगे। क्रान्तिकारी पंडित और मुल्ला सेना के धार्मिक विभाग में भी भर्ती हो गये। बहुरूपिये, जादूगर तथा ज्योतिषियों ने क्रान्ति का प्रचार स्त्रियों में किया। मद्रास तक में इस क्रान्ति का प्रचार किया गया। नाना साहब ने अपने भाई बालाजी के साथ तथा अजीमुल्ला के साथ तीर्थ यात्रा के बहाने समस्त देश का दौरा किया और व्यापक रूप में क्रान्ति का प्रचार किया।

३१ मई सन् १८५७ को देश में एक साथ क्रान्ति करने की

योजना तैयार कई गई, इसके संदेह में कितनी ही देशी सेनाएं तो निःशस्त्र भी कर दी गई।

आखिर १० मई रविवार को सायंकाल ५ बजे, जब गोरे गिरजाघरो में थे, मेरठ के सैनिकों ने अंग्रेजों को मारना शुरू किया। मेरठ के प्रायः सभी अंग्रेज मारे गये। बच्चे-खुचे भाग निकले। इसके बाद दिल्ली के लाल किले के अंग्रेजों को मार कर बहादुरशाह को फिर बादशाह बनाया गया और उसे २१ तोपों की सलामी दी गई। दिल्ली, कानपुर, कालपी, ग्वालियर, अलीगढ़, नसीराबाद, बरेली, मुरादाबाद, बदायूं, शाहजहांपुर, झांसी, रुहेलखंड आदि से अंग्रेजों का शासन समाप्त कर दिया गया। बाद में अंग्रेजों ने उन्हें अपने कब्जे में ले लिया। अंग्रेजों की लूटमार और क्रूरता इतनी उस समय बढ़ गई थी कि कई-कई सौ व्यक्तियों को एक ही साथ फांसी दी जाती थी। उधर नाना साहब का सर्वत्र आतंक छाया हुआ था।

कानपुर में जब दिल्ली की क्रांति का समाचार पहुंचा तो अंग्रेजों ने अपनी तथा अपने खजाने की रक्षा की जिम्मेदारी नाना साहब को सौंप दी। यहां लगभग एक हजार अंग्रेज औरत और बच्चे थे। यहां पर ४ जून को ही अंग्रेजी शासन समाप्त हो चुका था। अतः नाना साहब के प्रतिनिधि ज्वाला प्रसाद और अजीमुल्ला से अंग्रेजों ने भेट करके यह तै कर लिया कि अंग्रेज अपने अस्त्र-शस्त्र और खजाना नाना साहब को सौंप दें और नाना साहब उन्हें इलाहाबाद पहुंचाने का प्रबन्ध करें।

अंग्रेजों ने उसी दिन शाम को सब कुछ नाना साहब के सुपुर्द

कर दिया। अंग्रेजों को गंगा जी द्वारा इलाहाबाद भेजने के लिए नाना साहब ने ४० नावें तैयार कराईं और उन्हें खाद्य सामग्री से भर पूर कर दिया। इन नावों को २७ जून को कानपुर के सतीचौरा घाट से भेजने का प्रबन्ध किया गया था। इसी समय कानपुर के स्वतंत्र होने का समाचार सुनकर काशी और प्रयाग के हजारों सिपाही भी कानपुर आ पहुंचे। कहते हैं कि इनके बाल-बच्चों पर अंग्रेजों ने अत्याचार किया था।

जैसे ही नावें चली, एक बिगुल का शब्द सुनाई पड़ा और बात की बात में किनारे पर तोपों और बन्दूकों के शब्द एक दम गरज पड़े। नावों में आग लगा दी गई जिससे सभी अंग्रेज, औरतें और बच्चे पानी में कूद पड़े। इनमें कुछ तैरे, कुछ डूबे और कुछ जल मरे। ३० जून को केवल ४०० पुरुष १२५ अंग्रेज स्त्री-बच्चे शेष पाये गये। स्त्री-बच्चों को नाना साहब ने बड़े सम्मान के साथ एक कोठी में बन्दी बना कर रखा।

२८ जून को कानपुर में एक दरबार करके नाना साहब ने दिल्ली के सम्राट का सम्मान १०१ तोपों से गोले दाग कर किया। नाना साहब के सम्मान में २१ तोपों की सलामी दी गई और २ जुलाई को बिठूर में उनका राजतिलक किया गया।

इसके बाद क्रान्ति की ज्वालाएं उत्तर प्रदेश, बिहार, दिल्ली, ग्वालियर और राजपूताना आदि में फैल गईं। अंग्रेजी सेना कानपुर आ गई। कानपुर का पतन हो गया और अंग्रेजों ने बिठूर जाकर नाना साहब का महल गिरवा दिया और सभी मंदिरों को तोड़वा दिया।

नाना साहब अपने साथियों के साथ नेपाल चले गये, लेकिन वहाँ के सम्राट ने इनके नाम एक विरोध पत्र भेजा और अंग्रेजों को यह छूट दी कि वह नेपाल में जाकर उन्हें पकड़ ले। नाना साहब को वहाँ से हट जाना पड़ा। इसके बाद वह कहीं चले गये, इसका कुछ पता नहीं।



महारानी लक्ष्मीबाई

भारत की स्वतन्त्रता के इतिहास में लक्ष्मीबाई का प्रमुख स्थान है; जिस प्रकार भारत के सुपुत्रों ने समय-समय पर अपने को बलिदान किया है उसी तरह भारत की पुत्रियों ने भी अपना उत्सर्ग किया है। ऐसी ही प्रातः स्मरणीया महारानी लक्ष्मीबाई भी थी।

महारानी लक्ष्मीबाई का जन्म सन् १८३५ ई० में बनारस में हुआ था। उनके पिता का नाम श्री मोरोपन्त ताम्बे था। वे महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। अन्तिम पेशवा जब पदच्युत होने पर बिठूर भेजे गये तो उनके भाई चिमन्न जी आपा काशी चले आये। आपा जी के साथ ही मोरोपन्त ताम्बे भी काशी आये थे। महारानी का जन्म का नाम मनु बाई था। ज्योतिषियों ने कन्या के ग्रहों को देख कर यह भविष्यवाणी की थी कि यह कन्या बड़ी तेजस्विनी होगी और किसी की रानी होगी।

थोड़े ही दिन बाद आपा जी का देहान्त हो गया। ताम्बे जी निराश्रय हो गये। उनके सहारे, एक मात्र-आधार स्वरूप आपा जी चल बसे; ऐसी हालत में वे काशी कैसे रह सकते थे। वे बिठूर उनके भाई के पास चले आये और वही पर रहे। वे बिठूर भाई के पास चले आये और वहीं पर रह कर अपना समय बिताने लगे। तीन-चार वर्ष की आयु में मनु बाई की मां मर गई। पिता को ही मनु बाई की देख-रेख करनी पड़ी। पेशवा का मनु बाई पर विशेष



रानी लक्ष्मीबाई

प्रेम था मनु बाई अत्यन्त रूपवती थी मनु बाई और पेशवा के दत्तक पुत्र नाना साहब दोनो साथ-साथ खेला करते थे, साथ हा साथ पढ़ा-लिखा करते थे। जो काम नाना साहब करते थे, मनु बाई भी उसका अनुकरण करती थी। नाना साहब घोड़े पर चढ़ना सीखते, शिकार करने जाते, तलवार चलाना सीखते थे। मनु बाई भी वही सब काम करती और सीखती थी। और नाना साहब से जल्दी सब काम में निपुणता प्राप्त कर लेती थी। एक दिन नाना साहब को हाथी पर चढ़ते देख मनु बाई भी हाथी पर चढ़ने की जिद करने लगी। पेशवा ने कहा- “तेरे भाग्य में हाथी की सवारी कहां बदा है” ? उसे बात लग गई। फौरन उत्तर दिया- “मेरे भाग्य में एक नहीं दस हाथी बदे हैं”। इसके बाद वह थोड़े ही समय में पढ़ने-लिखने के साथ-साथ युद्ध कला में भी प्रवीण हो गई।

मनु बाई जब आठ वर्ष की हुई तो झांसी के राजा गङ्गाधर राव से उनका विवाह हो गया। विवाह के दिन से ही उनका नाम लक्ष्मीबाई पड़ गया। १६ वर्ष की उम्र में लक्ष्मीबाई के एक पुत्र उत्पन्न हुआ, पर वह शीघ्र ही मर गया, जिससे राजा गंगाधर को बड़ा दुःख हुआ और उसी पुत्र-शोक के कारण उनका शरीर दिन पर दिन क्षीण होने लगा तथा उसी प्रागढ़ शोक के कारण उनकी मृत्यु भी हो गई। मरने के पूर्व उन्होंने एक बालक गोद लिया था।

महारानी लक्ष्मीबाई ने पति के विधिवत क्रिया-कर्म किया। इस समय रानी की अठारह वर्ष उम्र थी। ऐसे समय में उन पर ऐसा महान दुःख आ पड़ा। एक तरफ महान् राज्य शासन-भार था, दूसरी ओर पति-वियोग की असह्य वेदना हृदय को आहत कर रही थी। रानी का यदि उस समय कोई सहारा था तो वही उनका दत्तक-पुत्र। रानी ने ब्रिटिश सरकार की सेवा में एक खरीता भेजा कि

सरकार उनक दत्तक पुत्र को राज्य का अधिकारी स्वाकृत कर ल कितु सरकार ने उसका कोई उत्तर नही दिया। फिर रानी ने दूसरा खरीता भेजा लेकिन उसका भी कोई उत्तर नही मिला। वहां तो कुछ दूसरा ही रहस्य था। सरकार रानी के दत्तक-पुत्र को स्वीकार करना नहीं चाहती थी। यदि वह स्वीकार कर लेती तो झांसी का राज्य उसके कब्जे मे कैसे आता। लार्ड डलहौजी ने रानी को एक आज्ञापत्र भेजा। उसमे उसने लिखा कि 'झांसी को सरकार ने ब्रिटिश राज्य मे मिला लिया है, लक्ष्मीबाई किला खाली कर दे, उन्हे पांच हजार रुपया महीना पेन्शन दी जायगी। वह अपनी सेना तोड़ दें और नौकर घटा दिए जाये'। रानी लार्ड का पत्र पाकर व्याकुल हो गई, उनको मर्मान्तिक पीड़ा हुई। पति-पुत्र के वियोग का दुःख उन पर से अभी दूर न हो सका था, उस पर इस घटना ने उनके कोमल हृदय को बहुत आघात पहुंचाया। रानी मूर्च्छित होकर गिर पड़ी, पर चारा ही क्या था? विवश होकर पेन्शन स्वीकार करनी पड़ी।

महारानी लक्ष्मीबाई ने एक पवित्र सती स्त्री की भांति अपना वैधव्य जीवन बिताना शुरू कर दिया। प्रातः काल चार बजे उठकर, स्नान, ध्यान, पूजा-पाठ, आदि से आठ बजे तक निवृत्त होकर महल के भीतर ही भ्रमण करती थी, उसके बाद भोजन करके कुछ विश्राम करती और अपने दैनिक कार्य मे लग जाती थी। इसके बाद अपने हाथ से ग्यारह सौ राम नाम की आटे की गोलियां बनाकर मछलियों को खिलाती, फिर रात के आठ बजे तक शास्त्र पुराणादि को सुनती थी। तत्पश्चात् भोजन करके ईश्वर का स्मरण करते हुए सो जाती थी। यही उनका नित्य का काम था। उनके पिता मोरोपन्त घर का काम करते थे।

रानी के साथ किये गये इस प्रकार के व्यवहार का जनता पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। लार्ड डलहौजी ने जिस स्वार्थ-परायणता का परिचय दिया था, वह सभी के हृदयों में कांटे की तरह खटक रहा था। मध्य भारत और उत्तर भारत के बीच झांसी ही एक ऐसा स्थान था, जहाँ से सिधिया तथा अन्य राजाओं को परास्त किया जा सकता था और मध्य भारत की बड़ी-बड़ी रियासतों पर काबू रखा जा सकता था। भला अंग्रेज लोग ऐसे कीमती स्थान को कब छोड़ने वाले थे। इन्हीं स्वार्थों से प्रेरित होकर दत्तक-पुत्र को अमान्य करार देकर, झांसी को सके देखते अपने अधीन कर लेना अंग्रेजों की यह नीति लोगों ने पसन्द न की, प्रत्युत इसके विपरीत लोगों में उनके प्रति घृणा उत्पन्न हो गई। यह घृणा दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही थी। इसी बीच सन् १८५७ ई० में विद्रोह की आग भभक उठी और वह धीरे-धीरे चारों तरफ फैलने लगी। झांसी भी इस विद्रोहाग्नि से कब अछूता रह सकती थी, झांसी में भी हलचल मचने लगी। अंग्रेजों को भी भय उत्पन्न हुआ, उन्होंने रानी से विद्रोह शान्त करने के लिए कहा- परन्तु रानी बेचारी इस अवस्था में सरकार की क्या सहायता कर सकती थी; रानी अब वह रानी कहाँ थी, न तो उनके पास अस्त्र-शस्त्र थे, न फौजे थी, वह क्या करती? इस पर भी वह जो कुछ कर सकती थी वैर-भाव भुला कर, किया। अंग्रेज स्त्री, बच्चों को अपने किले में शरण दी, लगभग सौ आदमी भी मदद के लिए भेजे किंतु इन सबसे क्या हो सकता था! बलबाई जोर पकड़ते गए। उन्होंने कितने ही अंग्रेजों का क्रूरता के साथ वध किया और महारानी के किले को घेर कर उनसे तीन लाख रुपये मांगे। रानी ने उन्हें समझाया, पर वे कब मानने वाले थे। रानी से रुपयों के लिए आग्रह करने लगे। रानी को

मारने तक का धमकी देने लगे और किले में आग लगान तक का तैयार हो गये। तब तो रानी को बहुत दुःख हुआ और उन्होंने किसी तरह उनसे अपनी जान उस समय छुड़ाई। अब झांसी में अंग्रेजों का कोई प्रभाव न रह गया था और एक तरह शासन उठ सा ही गया था। बलवाइयों का आंतक तो चारों ओर छा ही गया था। कुछ शांति मिलने पर रानी ने इस बलवे की सूचना सागर के कमिश्नर को दी। अंग्रेजों ने भी जब तक कोई अंग्रेज झांसी न पहुंचे, तब तक के लिए रानी को ही झांसी का शासन सौंप दिया।

ज्यों ही रानी ने शासन की बागडोर सँभाली, त्यों ही शिवराव ने झांसी पर आक्रमण कर दिया। रानी के पास कोई भी साधन न थे। इस पर भी रानी ने जिस चतुरता से शत्रु पर विजय पाई, वह एक आश्चर्य की बात थी। शिवराव अपना सा मुँह लेकर लौट गया। इतने में ओरछा के दीवान नत्थे खॉ ने बीस हजार सवार लेकर हमला कर दिया। रानी ने ब्रिटिश सरकार से सहायता चाही, पर सब व्यर्थ। नत्थे खॉ बड़े जोरो पर था। इस पर भी रानी ने हिम्मत न हारी। किले में रानी ने एक बड़ी सभा की और सभी को समझाया। उनको लड़ाई के लिए उत्साहित किया, किंतु कायरो पर कब रंग चढ़ सकता था। मारे क्रोध के रानी की आंखें अग्नि-वर्षा करने लगी और होठ फड़फड़ाने लगे। वह क्रोध में आकर बोली, 'धिक्कार है तुम लोगों के मानव जीवन को! मैं तो स्त्री होकर अपने साहस, धैर्य और बल पर विश्वास करके रण से विमुख कदापि नहीं हो सकती, चाहे तुम लोग कायर बने रहो।'

भाषण सुनते ही सभी बहुत लज्जित हुए और सब में एक बड़ी उत्तेजना फैल गई। सभी युद्ध की तैयारियाँ करने लगे,

तलवारे खिंचने लगी। किले के बुर्ज ठीक किये गये, उन पर तोपे लगा दी गई। रानी ने मर्दाना वेश धारण किया और विद्युत् की भांति सब में एक अपूर्व जोश पैदा कर दिया। कायर वीर बन गये।

नत्थे खाँ ने बड़े वेग से आक्रमण किया और अपनी सारी शक्ति लगा दी, किंतु रानी के आगे उसकी एक न चली। तलवार की धार से रण-क्षेत्र चमचमा उठा। सैकड़ों रण बांकुरों की लोथों से भूमि पट गई। नत्थे खाँ अपनी जान लेकर भागा, रानी की विजय हुई, किले पर विजय का झण्डा फहराया गया।

रानी ने जान पर खेल कर अंग्रेजों के राज्य की रक्षा की और झांसी को विद्रोहियों के पंजे से बचाये रखा। झांसी को छोड़ कर अन्य स्थानों पर विप्लवकारियों ने अपना कब्जा जमा लिया था। अंग्रेजों को रानी की जीत से प्रसन्न होना चाहिए था किंतु किसी के बहकाने से और यह अफवाह उड़ाने से कि रानी अंग्रेजों के विरुद्ध है, अंग्रेजों ने बिना इस बात की जांच किये ही उस सबला पर आक्रमण कर दिया। रानी को जब यह पता लगा कि मेरे विरुद्ध अंग्रेजों को किसी ने भड़काया है तो उन्होंने तुरंत आगरा के कमिश्नर को एक खरीता भेजा, जिससे कि गलतफहमी दूर हो जाय; पर इस बात पर ध्यान कौन देता है। अंग्रेजों को झांसी अपने कब्जे में करनी थी, भला उस पर वे किसी का शासन किस प्रकार देख सकते थे? हुक्म हुआ कि 'किला फौरन खाली कर दो। गोला-बारूद सब हवाले करके सामने हाजिर हो'। रानी अंग्रेजों के स्वार्थमय अभिप्राय को समझ गई। इधर सर ह्यूरोज एक बड़ी सेना लेकर चढ़ आया। रानी को यह विश्वास न था कि अंग्रेज इतनी शीघ्रता करेगे; वे क्षण भर भी न रुकेंगे। रानी अचेत थीं, उन्हें क्या

मालूम था कि मुझे फिर रणभेरी बजानी पड़ेगी। सिर पर सर ह्यूरोज को सेना की चढ़ा देख कर रानी की आंखें खुली। वे तिलमिला उठीं, मुट्ठी भर वीरो को लेकर रणांगन में कूद पड़ीं। कर्नल मैलेसन ने स्वयं लिखा है कि अंग्रेजों के दुर्व्यवहार के कारण महारानो को बलवा करना पड़ा।

रानी के थोड़े से सिपाहियों पर ह्यूरोज का अस्त्र-शस्त्र सुसज्जित दल टूट पड़ा परंतु रानी के रणबाकुरो का भी रण-कौशल देखने लायक था। थोड़े से लोगों ने ही दांत खट्टे कर दिये। अंग्रेजी सेना के छक्के छूट गए। दूसरों की तो कहना ही क्या, स्त्रियां तक गोला-बारूद तैयार कतरी थीं। अंग्रेजो ने किला फतह करने का बहुत प्रयत्न किया, किंतु सब निष्फल रहा। इतने में एक विश्वासघाती ने यह भेद बता दिया कि किस ओर से आक्रमण करने से किला कब्जे में आ सकता है। फिर क्या था वैसा ही किया गया। शहर की दीवार बेध दी गई और अंग्रेज भीतर घुस आये। रानी ने जब कोई रक्षा का उपाय न देखा तो नंगी तलवार लेकर निकल पड़ी, और क्षण भर रण-ताण्डव करके और सैकड़ों को मौत के घाट उतार कर फिर किले में घुस गईं।

रानी ने सोचा अब यहां से निकल चलना ही श्रेयस्कर है। दत्तक-पुत्र को अपनी पीठ पर लाद कर और स्वयं घोड़े पर सवार होकर १०-१२ वीर बहादुर अंगरक्षको को लेकर जब अंग्रेजी सेना के जाल से महारानी निकल गई तो ह्यूरोज को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने एक लेफ्टिनेन्ट को पकड़ने के लिए भेजा। रानी एक गांव में अपने उस पुत्र को खाना खिला कर आगे चलने की तैयारी में ही थी कि इतने में लेफ्टिनेन्ट पहुंच गया। उसके साथ में सेना थी।

रानी अकेली थी, पर भिड़ गई। रानी का रण-कौशल अद्भुत था, उन्होंने कमाल कर दिया। उस क्षण वह साक्षात् दुर्गा के रूप में देखी गई। आक्रांता पर एक ऐसा वार किया कि वह छटपटा कर गिर गया। उसकी सेना भाग खड़ी हुई और रानी पुत्र सहित बिना कुछ खाये-पिये १०२ मील बराबर घोड़ा दौड़ता हुई कालपी जाकर रुकीं तथा पेशवा से मिल गईं।

जब रानी पर कुछ वश न चला तो खिसिया कर अंग्रेज तरह-तरह के अत्याचार करने लगे। इधर रानी के पिता ताम्बे को पकड़ कर गोरो ने फांसी दे दी। शहर में आग लगा दी। तीन-चार दिन तक झांसी खूब लूटी गई, जितने अत्याचार किये जा सकते थे, किये गये। रोमांचकारी दृश्यों को देख कर हृदय थर्रा उठा था। छोटे-छोटे बच्चों से लेकर अस्सी वर्ष तक के बूढ़े, स्त्री, पुरुषों को निर्दयता पूर्वक मारा गया। झांसी की इस घटना का उल्लेख स्वयं अंग्रेज ग्रंथकारों ने किया है।

सर ह्यूरोज को इतने से ही सन्तोष न हुआ। जब उसने सुना कि रानी कालपी पहुंच कर पेशवा से जा मिली है, तो उसने कालपी पर चढ़ाई कर दिया। पेशवा की सेना खूब लड़ी, पर अन्त में जब उसके पैर उखड़ गये तो रानी ने अपना घोड़ा मंगवाया और अपने सिपाहियों सहित अंग्रेजों पर आक्रमण कर दिया। रानी को इस बार भी विकराल रूप धारण करना पड़ा। उन्होंने ऐसा युद्ध किया जिसकी तुलना नहीं की जा सकती। संसार के पदों पर उस वीरांगना की समता नहीं की जा सकती। उसने शत्रुओं के छक्के छुड़ा दिये। रानी अकेली कहां तक क्या करतीं, पेशवा की सेना का संगठन ठीक न था, इसी से हारना पड़ा। रानी साफ निकल गई।

इधर अवसर पा कर पेशवा की निर्बलता का अनुभव करके सिधिया चढ़ आया। बलवाई पहले तो जी-जान से लड़े, किंतु सिधिया के सामने उनके पैर न जम सके। बलवाइयो की सेना भागना ही चाहती थी कि महारानी ने अपने दो-तीन सौ जवान बुलाये और सिधिया की सेना पर भूखे शेर की तरह टूट पड़ी। रानी की लपलपाती तलवार से सिधिया घबरा गया। स्वयं सिधिया जान बचा कर भागा। रानी के पराक्रम से पेशवा जीता और ग्वालियर का किला अधिकार में आया।

सर ह्यूरोज को कब चैन थी, वह फिर एक बड़ी सेना लेकर आ धमका, उसे पेशवा से डर न था। अगर उसे डर था तो महारानी लक्ष्मीबाई का। कर्नल मैन्सिल का कहना है कि महारानी के अतिरिक्त किसी में इतनी बुद्धि और रणकुशलता न थी कि जो सब तरह की तरकीबे समय पर सुझाता। रानी सिपाहियों को लेकर आगे बढ़ी और तोपे दागने की आज्ञा दे दी। अंग्रेज घबड़ा गये, दोनो में खूब युद्ध हुआ। अन्त में अंग्रेजों ने चारों ओर से घेर लिया। दनादन गोलियां बरस रही थी, उस घेरे से निकल जाना आसान काम न था। महारानी अपने कुछ साथियो सहित उस विकट व्यूह से निकलने का प्रयत्न कर रही थी। शत्रुओं के घनघोर प्रहार होने पर वे भी अपनी दासियों और स्वामिभक्त सरदार रामचन्द्र राव सहित बाहर निकल ही तो आईं। कुछ सवारो ने रानी का पीछा किया, निर्दय होकर उन पर अंधाधुन्ध गोलियां बरसाई गईं। एक गोली रानी की पीठ में लगी, जिससे उनका शरीर शिथिल हो गया। इतने में गोरे समीप आ पहुंचे। रानी ने भी उन्हे उनकी करनी का फल चखा दिया।

गोली मारने वाले को तलवार के घाट उतार दिया गया। वह जरा आगे बढ़ी ही थीं कि एक दासी चिल्लाई। पीछे फिर कर देखा तो एक गोरा दासी पर आक्रमण कर रहा था। उसे महारानी ने फौरन काटा और आगे बढ़ीं।

महारानी ने तो कोई कसर बाकी न छोड़ी, पर दुर्भाग्य को कोई क्या करे। एक नाले को देखकर घोड़ा अड़ गया। इतने में महारानी को एक गोली और लगी। उधर एक सवार ने धोखे से वार किया, जिससे महारानी के सिर का दाहिना हिस्सा छिन्न-भिन्न हो गया। उनकी आंख निकल आई।

इतने में एक निर्दयी ने उनकी छाती में किर्च भोक दी। इतने भीषण प्रहारों पर भी रानी ने अपनी तलवारों से उन गोरो के दो-दो टुकड़े कर ही दिये। उनके शरीर में अब कुछ शक्ति न थी, वह धराशायी हो रही थी। उन्होंने रामचन्द्र राव को इशारा किया। वह नेत्रों से आंसू बहाता हुआ आया और रानी को एक कुटिया में ले गया। महारानी को प्यास लगी हुई थी। गंगा जल पीकर अपने प्यासे पुत्र को प्यार किया। भारत की स्वतन्त्रता का स्मरण करती हुई महारानी प्राण त्याग दिये। ऐसी देवियों को स्मरण करके भारत अपना मुखोज्ज्वल कर सकता है, जिसकी वीरता की कहानी आज भी कायरो में वीरता, आलसियो में स्फूर्ति, डरपोकों में निर्भयता भर रही है।





खुदीराम बोस

अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा का प्रभाव सबसे प्रथम बंगाल पर पड़ा। अंग्रेजी सभ्यता के संस्पर्श में आकर राजा राममोहन राय समझ गये थे कि भारत की उन्नति विदेशी समाज के संस्पर्श में आकर और विदेशी विचार-धाराओं से परिचित होकर ही हो सकती है। इसीलिए उन्होंने भारतीय शिक्षा पद्धति में पश्चिमी विचार-धाराओं के प्रभाव को अत्यन्त उयोगी समझा, प्रधानतः उनकी ही चेष्टा से बंगाल में अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार हुआ और इसी अंग्रेजी शिक्षा के कारण पाश्चात्य क्रांतिकारी भावनाओं ने बंगाल के हृदय को स्पर्श किया। पाश्चात्य सभ्यता के संस्पर्श में आकर नाना प्रकार के आघात पाने के कारण नवीन जागृति उत्पन्न हुई। तब से बंगाल में क्रान्तिमय विचारों की सृष्टि हुई। समय-समय पर लोग अपने विचार जनता में प्रकट करने लगे। इस प्रकार के लोगों का केन्द्र प्रायः कलकत्ता ही था।

सन् १९०८ की बात है, अप्रैल की तीसवीं तारीख थी। इसी दिन एक बालक ने बम द्वारा अंग्रेज की हत्या करने का प्रत्यन किया और विप्लव की घोषणा की। इस बालक का नाम खुदीराम बोस था।

खुदीराम बोस का जन्म सन् १८९१ई० में कलकत्ता के मेदिनीपुर जिले के बहुवैनी गांव के एक अच्छे कायस्थ वंश में



खुदीराम बोस

हुआ था। खुदीराम अभी बालक था, कलकत्ते में शिक्षा पा रहा था। उन्हीं दिनों कलकत्ता कोर्ट के जज मि० किंग्सफोर्ड ने कलकत्ता में कुछ विप्लववादियों को दण्ड दिया था और एक-एक को दूँड़ कर उनको खत्म करने के प्रयत्न में लगा हुआ था। विप्लववादियों ने बहुत तंग आकर किंग्सफोर्ड को मार डालने का निश्चय किया और इसके लिए दो वीर नियुक्त किये गये- एक प्रफुल्ल कुमार चाकी और दूसरे खुदीराम बोसा।

मि० किंग्सफोर्ड अब कलकत्ता से बदल कर मुजफ्फरपुर चला आया था। दोनो वीर भी मुजफ्फरपुर आकर स्टेशन के पास ही एक धर्मशाला में ठहर गये। धर्मशाला में दस-बारह दिन रहे और घूम-घूम कर सब बातों का पता लगाने लगे। उन्होंने अच्छी तरह यह जान लिया कि मि० किंग्सफोर्ड किस रङ्ग की गाड़ी में बैठकर घूमने निकलता है, उसके निकलने का कौन सा समय है, किधर से होकर कहां को जाया करता है इत्यादि जानने योग्य बातों का उन्होंने अच्छी तरह पता लगा लिया था तथा उन्होंने निश्चय किया कि जिस समय किंग्सफोर्ड घूमने को क्लब में जाता है वही समय इस काम के लिए उपयुक्त होगा। दोनों युवक उसकी घात में रह कर अवसर की प्रतीक्षा में रहने लगे।

कई दिन बराबर प्रयत्न करने पर भी वे अपने काम का मौका न पा सके। तीस अप्रैल की, रात का समय था, लगभग आठ बजे होंगे। बीच सड़क पर एक जोर का धमाका हुआ और थोड़ी ही देर बाद चारों ओर शहर में यह खबर बिजली की भांति दौड़ती हुई सुनाई गई कि स्थानीय वकील अंग्रेज मि० पी० केनेडी पर किसी ने बम फेंका है जिससे केनेडी की लड़की मर गई, कोचवान मर गया। केनेडी के सख्त चोट आई और उनकी स्त्री भी मरणासन्न है।

बात यह थी कि मि० केनेडी की गाड़ी भी उसी रङ्ग की वैसी ही थी, जैसी मि० किंग्सफोर्ड की थी। उन दोनों को बात मालूम नहीं थी। वे दोनों नवयुवक तो एक क्लब के फाटक के पास वृक्षों की ओट में बम फेंक कर और अपना काम सफल समझ कर नौ-दो-ग्यारह हो गये। हां, किंग्सफोर्ड के शरीर रक्षक तहसीलदार खॉ और फैजुद्दीन ने शाम को क्लब की सड़क पर उन दोनों को टहलते भी देखा था और तहसीलदार खॉ ने भागते समय भी देखा था।

जब पुलिस को इस घटना की खबर लगी तो वह सचेष्ट होकर चारों तरफ दौड़ने लगी। शहर चारों तरफ से घेर लिया गया। बाहर से आने-जाने वाले लोगों पर तीव्र दृष्टि रखी जाने लगी, पर अब इन बातों से क्या होता था। उधर तो वे दोनों भाग निकले थे, खुदीराम रातो-रात भागता-भागता मुजफ्फरपुर से पूरब पच्चीस मील दूर बेनी पहुंचा। जगह-जगह पुलिस स्टेशनों, रेल के स्टेशनों पर उन दोनों की हुलिया और पकड़ने के वारण्ट निकाले गये। पुलिस बड़ी सतर्कता से इस मामले की खोज करने में लगी थी।

खुदीराम बोस बेनी बहंच कर भूख से अत्यन्त व्याकुल था। उसने खाने के लिए सोचा, पर उस समय रात को खाने की क्या चीज मिल सकती थी, वह एक मोदी की दूकान पर लाई-चने खरीदने गया। दूकान स्टेशन के समीप थी, वहीं पर स्टेशन मास्टर अपने पैटमैन से कह रहा था, 'मुजफ्फरपुर में दो मेमो की हत्या करके दो नवयुवक भागे हैं, उनके पकड़ने का वारण्ट आया है। देखो, कहीं इस गाड़ी में न आते हो।

खुदीराम बोस दूकान पर खड़ा खड़ा यह बातें सुन रहा था। उसे यह मालूम नहीं था कि अदृष्ट मेरे पीछे लगा है। वह सहसा चौक

पडा ओर उद्वग मे आकर कह उठा ऐ क्या किंग्सफोर्ड नही मारा गया' ? पास में खड़े हुए लोगो ने यह ताड़ लिया कि हो न हो यही मारने वाला है- खुदीराम भागा, जोर से भागा, पुलिस के सिपाहियो ने पीछा किया। दो सिपाही उसके पीछे तीन मील तक दौड़ते चले गये। खुदीराम बोस दौड़ते-दौड़ते थक चुका था, अब उसके लिए आगे जाना कठिन था। उसके पास उस समय एक खाली और एक भरा हुआ पिस्तौल था। साथ मे तीस कारतूस थे। उसने घूम कर सिपाहियो को डराने की कोशिश की, पर अब व्यर्थ। वह पकड़ लिया गया और रेल पर सवार करके बेनी से मुजफ्फरपुर लाया गया।

खुदीराम के पकड़े जाने की खबर लग गई। जिस समय वह मुजफ्फरपुर के स्टेशन पर उतारा गया, भीड़ का क्या कहना था। सारा शहर उसके देखने के लिए उमड़ पड़ा। सबने देखा उसके मुख पर भोलापन है, पर हंसी होठो पर इठला रही है। उसके चित्त मे उमङ्ग थी और आँखों मे निर्भयता झलक रही थी। किसी को विश्वास न होता था कि सत्रह वर्ष का देवमूर्ति बालक भी क्या ऐसा काम कर सकता है।

प्रफुल्लचन्द्र चाकी भी भागता हुआ समस्तीपुर पहुंचा। वह रेल मे बैठा था, उसी डिब्बे में एक दारोगा भी बैठा था, दारोगा मुजफ्फरपुर-हत्याकाण्ड की घटना सुन ही चुका था। उसे प्रफुल्ल पर सन्देह हुआ। प्रफुल्ल भी कुछ ताड़ गया और दूसरे डिब्बे मे जा बैठा। दारोगा ने तार द्वारा मुजफ्फरपुर की पुलिस को सूचना दी और हुलिया मालूम कर दो-तीन स्टेशन बाद ही प्रफुल्ल को गिरफ्तार करने चला। चाकी ने पकड़ने वालों में एक पर पिस्तौल

का वार किया, पर निशाना खाली गया। अन्त में उसने बचने का कोई उपाय न देख कर दूसरा फायर अपने ऊपर ही करके आत्महत्या कर लिया और इस लोक की मानव-लीला समाप्त कर ली। दारोगा हाथ मल कर रह गया, सुना गया कि इस घटना के कुछ ही काल बाद दारोगा दिन दहाड़े कलकत्ता में मार डाला गया। दारोगा का नाम नन्दलाल बनर्जी था।

मजिस्ट्रेट के सामने मुजफ्फरपुर-हत्याकाण्ड का मामला उपस्थित हुआ। अदालत में काफी भीड़ थी। सब लोग उसके मामले को सुनने के लिए उत्सुक थे। सभी लोगों की धारणा थी कि भला क्या यह भोला बालक भी हत्या करने वाला हो सकता है। मजिस्ट्रेट ने पूछा- बताओ, तुमने क्या बम फेंका था? उसने वीरता-पूर्वक उत्तर दिया, “मैंने स्वयं बम फेंका है और हत्या की है।” खुदीराम पर मुकदमा चला और जो कुछ होना था वही हुआ फैसला सुना दिया गया। खुदीराम बोस को फांसी की सजा हुई। कुछ लोगों ने फैसले के विरुद्ध हाईकोर्ट में अपील की, वहां भी कोई परिणाम न हुआ, फांसी की सजा बहाल रही। १२ अगस्त १९०८ फांसी की तारीख निश्चित की गई।

खुदीराम बोस बड़ा प्रसन्नमुख व्यक्ति था। जितने दिन वह जेल में रहा, वह स्वस्थ चित्त और प्रफुल्ल था। मालूम पड़ता था कि उसे मृत्यु का स्वप्न में भी भय न था। जेल के डाक्टर ने फांसी के एक दिन पूर्व खुदीराम को एक देशी आम खाने को दिया। खुदीराम ने उसे चूसा और छिलके को मुंह से फुला कर खिड़की पर रख दिया। डाक्टर ने लौट कर देखा, आम ज्यों का त्यों रखा है। पूछा-तुमने अब तक आम खाया नहीं?” “क्यों? खा तो

लिया बास न हसते हसत कहा उसे उठाकर देखिए न डाक्टर न आम उठा कर देखा ता गुठला नदारद सिर्फ छिलका हा छिलका था. डाक्टर झेप गया, पर खुदोराम जोर से खिलखिला कर हंस पड़ा। डाक्टर यह दृश्य देख कर बड़े आश्चर्य में था और सोचता था कि यह बड़ा ही विलक्षण प्रकृति का मनुष्य है जिसे कल फांसी होने वाली हो वह इतना प्रसन्न हो।

फांसी की तारीख आ पहुंची, सदा की भांति वह उठा और उसने अपना नित्य-कर्म किया। गीता के कुछ श्लोक पढ़े तथा गीता हाथ में लिए हुये हंसता-हसता फांसी के तख्ते पर जा खड़ा हुआ। मृत्युपाश गले में पड़ गया, देखते-देखते प्राण-पखेरू उड़ गए।

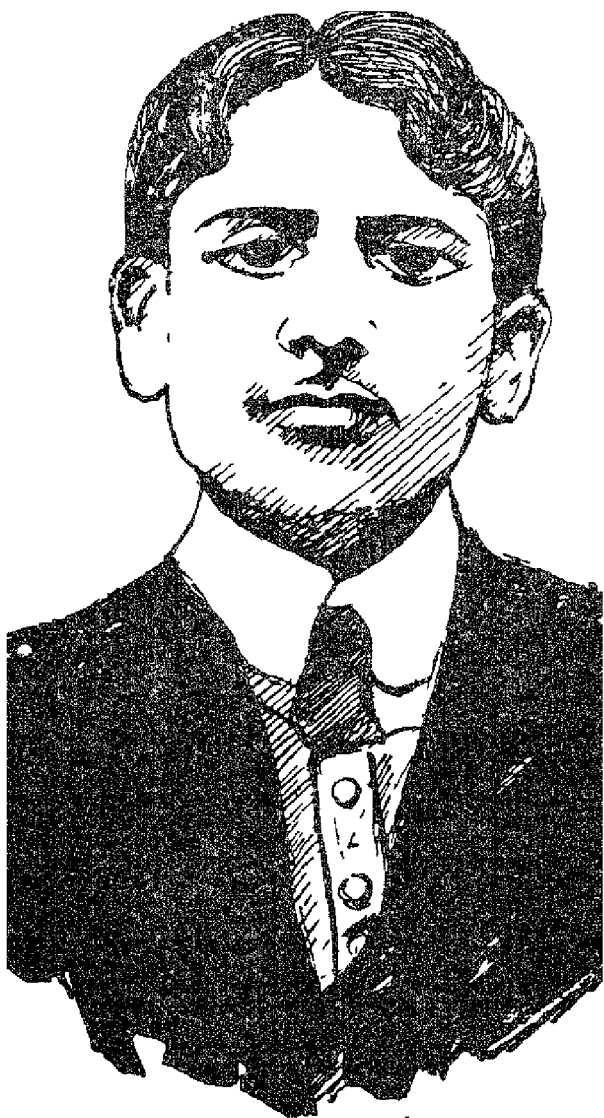
बोस की अन्त्येष्टि करने की स्वीकृति बाबू कालीदास ने पहले से ही जिला मजिस्ट्रेट से ले ली थी। यथा समय सुगन्ध, चन्दन और पुष्प मालाओं से सुसज्जित अरथी क्रिया के लिए श्मशान घाट की ओर निकल पड़ी, अरथी के साथ-साथ हजारों की संख्या में जन समुदाय था। यह उस समय की घटना थी, जिस समय 'बन्दे मातरम्' कहना अपराध समझा जाता था। सरकार ने अपने आतंकवाद का फौलादी पंजा प्रजा पर जमा रखा था। उस समय यह बात बड़े महत्व और साहस की समझी जाती थी। श्मशान पर चिता बनाई गई, देखते-देखते चिता धधकने लगी। उसका पार्थिव क्षण भर में क्षार हो गया। लोगो ने उसके भस्म के लिए छीना-झपटी की, और बड़े प्रेम से उसे अपने पास रखा। वह एक तरह से भारत के हृदय का उपास्य-देव बन गया था।



मदन लाल ढींगरा

बीसवी सदी के आरम्भ में जब स्वदेशी आन्दोलन शुरू हुआ था, बंगाल की भांति पंजाब ने भी उसे सहर्ष अपनाया। स्वतन्त्रता संग्राम में पंजाब किसी प्रान्त से पीछे नहीं रहा। जब-जब किसी नवीन विचार-धारा का प्रवाह हुआ है, पंजाब ने उसमें पूरा भाग लिया है। देश की पराधीनता का अनुभव पंजाब ने अन्य प्रान्तों के समान ही किया। उसके भी हृदय में कसक पैदा होती रही है। संसार में सभी व्यक्ति एक से नहीं होते। कोई वाक-सूर होते हैं तो कोई कर्मनिष्ठ होते हैं। दोनों ही की देश को आवश्यकता है। दोनों तरह के व्यक्ति देश की विभूतियां हैं। उनसे संसार की सुन्दरता और ज्योति की अद्भुत वृद्धि होती है। उनके अमर बलिदान ही देश की सच्ची सम्पत्ति हो जाते हैं। बीसवीं शताब्दी के प्रथम अमर शहीद मदन लाल ढींगरा ने ही उज्ज्वल बलिदान का श्री गणेश किया।

ढींगरा ने कोई ऊंचे कुल में जन्म नहीं लिया था, न वे कोई बड़े नेता ही थे, जो शीघ्र ही प्रसिद्धि प्राप्त कर लेते। उन्होंने मूकभाव से रह कर जो कार्य किया, वह सचमुच सराहनीय है। इसलिए नहीं कि उन्होंने एक हत्या करके कोई प्रशंसनीय कार्य किया हो किन्तु वे इसलिए प्रशंसा के पात्र हैं कि जिस काम को वे



मदन लाल ढींगरा ।

उचित समझते थे, उसके लिए उनमें अपने को उत्सर्ग करने की अपूर्व क्षमता थी। अपने सिद्धान्त पर न्योछावर करने की उनमें शक्ति थी, इसी विचार से उन्होंने मातृ-भूमि के चरणों में अपने को बलिदान कर दिया।

ढींगरा का जन्म अमृतसर के एक सम्मानित खत्री कुल में १८८७ में हुआ था। उनके घर में सारे सांसारिक सुख विद्यमान थे। यहां से वह बी०ए० पास करके इंग्लैण्ड में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए गए। ढींगरा बहुत रसिक और भावुक थे। उनको फूलों और बगीचों से बड़ा प्रेम था, वे सुन्दर उपवनों और कुंजों में बैठकर अपना बहुत सा समय बिताया करते थे।

ढींगरा एक असाधारण मनुष्य था। उसके चेहरे से एक प्रकार की आभा निकलती थी। भारत के स्वदेशी आन्दोलन का प्रभाव इसी समय इंग्लैण्ड में भी जा पहुंचा। वीर सावरकर द्वारा स्थापित 'इंडिया हाउस' के मदनलाल भी सदस्य बन गये। इधर भारत में खुले आन्दोलन के दबाये जाने के कारण क्रान्तिकारी दल ने गुप्त सभाएं शुरू कर दिया। यहां तक कि सन् १९०८ ई० में अलीपुर-षड़यंत्र का मुकदमा खड़ा कर दिया। कन्हाईलाल दत्त, सत्येन्द्रनाथ बसु, वारीन्द्र तथा उल्लासकर दत्त आदि की प्राण-दण्ड की खबरें इंग्लैण्ड पहुंच गईं।

इन समाचारों से मदनलाल ढींगरा उत्तेजित हो उठा। कहते हैं कि एक दिन रात को सावरकर और मदनलाल ढींगरा बहुत देर तक सलाह करते रहे। मदनलाल ने अपना जीवन तक उत्सर्ग करने की हिम्मत दिखाते हुए देख कर सावरकर ने मदनलाल को पृथ्वी

पर हाथ रखने को कहा। उनके हाथ जमीन पर रखते ही सावरकर ने ऊपर से मदन के हाथ में चाकू भोक दिया। उस पर पंजाबी युवक ने उफ तक न की। चाकू खींच लिया गया। यह काम सावरकर ने किसी बुरे भाव से नहीं किया था अपितु वह केवल उसके धैर्य और साहस की परीक्षा की दृष्टि से किया गया था। दोनों की आंखों में आंसू भर आये। दोनों एक दूसरे का आलिङ्गन कर खड़े हो गये।

दूसरे दिन से मदनलाल सावरकर को सभा 'इण्डिया हाउस' में नहीं गये। वे भारतीय विद्यार्थियों के लिए खुफिया पुलिस का विशेष प्रबन्ध करने वाले और उनकी स्वतन्त्रता को कुचलने वाले सर कर्जन वायली द्वारा स्थापित की हुई भारतीय विद्यार्थियों की सभा में जाकर सम्मिलित हो गये। यह देख कर इण्डिया हाउस के नवयुवक अत्यन्त क्रोधित हुए और मदन को देशद्रोही तथा देश-घातक कहने लगे।

सावरकर जी ने उनको यह कहकर शांत कर दिया कि मदनलाल ने हमारी सभा के लिए काफी परिश्रम किया था। उन्हीं के प्रयत्न से हमारी सभा सफलता पूर्वक चल रही है। हमें तो उनको धन्यवाद ही देना चाहिए।

पहली जुलाई का दिन था। यह बात सन् १९०९ की है। इम्पीरियल इन्स्टीट्यूट के जहाँगीर हाल में एक सभा थी। सर कर्जन वायली भी वहाँ गये हुए थे। वे दो आदमियों के साथ बातें कर रहे थे कि ढींगरा ने पिस्तौल निकाल कर उनके मुख की ओर तान दी। कर्जन वायली मारे डर के चीख उठे, परन्तु मदनलाल ने

तुरन्त दो गोलिया उनका छाता मे दाग दी, जिनसे उनके प्राण पखेरू उड़ गये। थोड़ी देर के बाद ढीगरा पकड़े गये। वह वीर अचल-पर्वत की भांति अपने स्थान पर स्थिर रहा।

लन्दन मे विपिन पाल की अध्यक्षता मे मदनलाल ढीगरा के इस कार्य की निंदा के लिए एक सभा बुलायी गयी, लेकिन इस सभा में निंदा प्रस्ताव पास होने पूर्व ही वीर सावरकर खड़े हो कर कहने लगे- “ढींगरा का मामला विचाराधीन है, इसलिए ढीगरा की किसी प्रकार की निंदा न की जाये क्योंकि उससे मुकदमें पर असर पड़ेगा।” उसी समय एक अंग्रेज ने क्रोध मे भरकर सावरकर के एक घूसा जमा दिया और कहने लगा “देख अंग्रेजी घूसा कैसा ठीक बैठता है”- इतना कहता था कि मनचले भारत वासी नवयुवक ने उस अंग्रेज के सिर पर एक लाठी जड़ दी और कहा कि “देख, हिन्दुस्तानी डंडा कैसा ठिकाने से बैठता है”। वहां शोर मच गया कि भारतीय ने बम चला दिये। भगदड़ मच गई, सभा भङ्ग हो गई और ढीगरा की निन्दा का प्रस्ताव वैसा ही रह गया।

मुकदमा हो रहा था। मदनलाल बहुत प्रसन्न और शांत थे। उनको मृत्यु का तनिक भी भय न था, वे आनंद से अदालत की कार्यवाही को देख रहे थे। वे देख रहे थे कि न्याय के नाम पर दुनिया क्या-क्या रंग रचती है, कैसे-कैसे तमाशे करती है। अंत मे उनके बयान की बारी आई। उन्होंने जो बयान दिया, वह बड़ा ही मर्मस्पर्शी था। उन्ही के शब्दों मे यहां उद्धृत है एक अंश—

‘मैं मानता हूं कि मैंने जो उस दिन एक अंग्रेज की हत्या की थी, यह उन निर्दयता भरी सजाओं का एक अत्यन्त तुच्छ प्रतिकार

है जो भारत में नवयुवको को फासी और काले पाना के रूप में दी गई है। मैंने इस कार्य में अपनी आत्मा के अतिरिक्त और किसी की सम्मति नहीं ली। अपनी कर्तव्य-बुद्धि के अतिरिक्त किसी के साथ षड्यंत्र नहीं किया। मैं एक हिन्दू होने की हैसियत से समझता हूँ कि देश के साथ अन्याय किया गया। अन्याय ईश्वर का अपमान है। मेरे पास मातृभूमि की सेवा के लिए क्या है? इसलिए मैं यह अपना तुच्छ शरीर उसकी सेवा में अर्पण करता हूँ।

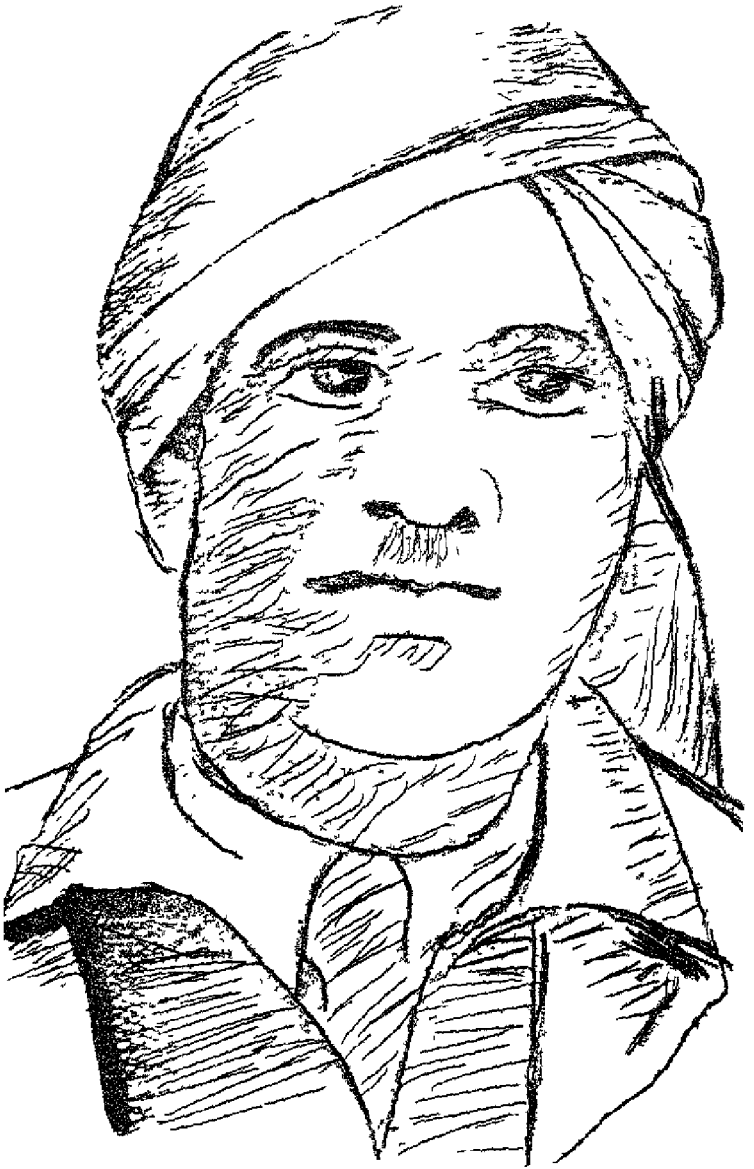
१७ अगस्त १९०९ का दिन था। उसी दिन इंग्लैण्ड में मदनलाल ढींगरा को फांसी के तख्ते पर चढ़ा दिया गया, और वह 'वंदे मातरम' कहता हुआ हंसते-हंसते फांसी के झूले पर झूल गया।



ऊधम सिंह

“मैं मौत की सजा की परवाह नहीं करता। मेरे लिए इसका कोई अर्थ नहीं है। मुझे मरने या किसी और बात की भी कोई चिंता नहीं है। हम अंग्रेजी साम्राज्य से पीड़ित हैं। मैं मरने से नहीं डरता। मुझे मरने का गर्व है। मैं अपनी मातृभूमि की मदद करना चाहता हूँ। मुझे विश्वास है कि मेरी जगह मेरे महान देश के जो सपूत आधेगे, वे तुम्हारे धिनौने कुत्तो को भारत से निकाल बाहर करेगे।” हंसते-हसते फांसी का फंदा चूमने वाले उस बहादुर सरदार ऊधम सिंह का यह कथन सही साबित हुआ और अंग्रेज भारत से मार भगाये गये, लेकिन उनकी क्रूरता, उनके पैशाचिक, घृणित कारनामों, और भारत माता के तमाम महान सपूतों को निर्ममता पूर्वक मौत के घाट उतारने का निंदनीय इतिहास तो लिख ही दिया गया।

ऊधम सिंह का जन्म २६ दिसंबर १८९९ को पटियाला रियासत के एक छोटे से कस्बे सुनाम में हुआ था। उनके पिता टहल सिंह रेलवे में चौकीदारी करके अपनी पत्नी नारायण कौर और दो पुत्रों ऊधम सिंह तथा साधू सिंह का किसी तरह भरण-पोषण करते थे। बच्चे जब छोटे थे, उसी समय मां का देहांत हो गया। टहल सिंह बच्चों को लेकर अमृतसर चले गये लेकिन दुर्भाग्यवश ने उनका पीछा नहीं छोड़ा। छोटी सी बीमारी में टहल



उधम सिंह

सिंह भी चल बस

दोनो अनाथ बच्चो को खालसा दीवान के अनाथाश्रम मे डाल दिया गया। विडम्बना देखिये कि भाई साधू सिंह का भी देहांत हो गया। कुल ले-दे कर ऊधम सिंह इस दुनिया मे उस समय अकेले बचे। कहा जाता है है कि बहादुर कभी हिम्मत नही हारते। उधम सिंह ने किसी तरह दसवी की पढ़ाई पूरी कर लिया। उन्होंने अपना खानदानी पेशा बढ़ईगीरी और उसके साथ-साथ मेकेनिक का काम भी सीखा।

ऊधम सिंह एक ओर अपनी रोजी-रोटी का इंतजाम करने मे लगे थे कि उसी समय १३ अप्रैल १९१९ का जलियांवाला बाग-काण्ड हो गया। ठीक बैसाखी के दिन अंग्रेजों ने निहत्थे लोगों पर अंधाधुंध गोलियां चलवा कर तमाम लोगो को मौत के घाट उतरवा दिया। रोंगटे खड़ा कर देने वाला जलियांवाला बाग-काण्ड अंग्रेजो की पाशविकता का सबसे घृणित अध्याय रहा। ऊधम सिंह को दूसरे दिन घायलो की सेवा के लिए जलियांवाला बाग भेजा गया। उन्होने वहां अपने साथियो के साथ जो कुछ देखा, उससे उनके भीतर हत्यारे अंग्रेजों से प्रतिशोध लेने का दृढ़-संकल्प पैदा हुआ। उसी दिन से ऊधम सिंह अपने लक्ष्य तक पहुंचने की रणनीति बनाने में जुट गये।

जलियांवाला बाग-काण्ड के लिए मुख्य रूप से जो अंग्रेज उनमें से एक वरिष्ठ अफसर जिम्मेदार माने गये सर माइकल फ्रांसिसे ओ डायर उस समय पंजाब का लेफ्टीनेट गवर्नर था और जनरल आर०ई०एच० डायर ने भारतीयों का निर्दयता पूर्वक

कत्लेआम किया था। इनके अलावा लार्ड जेटलैण्ड और लार्ड वेलिगडन जैसे लोग भी भारतीयों को यातनाएं दिये जाने के लिए जिम्मेदार थे। ऊधम सिंह ने मुख्य रूप से ओ' डायर का सीना छलनी करके अपने देशवासियों के खून का बदला लेने का लक्ष्य रखा था।

अपने लक्ष्य तक पहुंचने में सरदार ऊधम सिंह को बीस वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पड़ी थी। इस बीच वे अफ्रीका, अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी, पोलैण्ड, स्विट्जरलैण्ड, हंगरी, इटली और लिथुआनिया गये। उन्होंने ईरान, अफगानिस्तान, कनाडा, जापान, बर्मा, सिंगापुर, हांगकांग, पनामा, मेक्सिको आदि में स्थित गदर पार्टी के क्रांतिकारियों से सम्पर्क स्थापित किया। वे सरदार भगत सिंह जैसे महान क्रांतिकारियों के भी सम्पर्क में रहे। उन्होंने क्रांतिकारी जीवन में अपने अनेक रहस्यमय नाम रखे। प्राप्त विवरणों के अनुसार वे उदे सिंह, उधान सिंह, फ्रैंक ब्राजील, यू०एस० सिन्धू, हिज हाईनेस प्रिंस सिधू और मोहम्मद सिंह आजाद बने उनके दाहिने हाथ में मोहम्मद सिंह आजाद गोदा था। कुछ लोग उनका एक नाम राम मोहम्मद सिंह आजाद भी बताते हैं जबकि कुछ इसे मानने के लिए तैयार नहीं हैं। उनका कहना है कि सरदार ऊधम सिंह का आखिरी नाम 'मोहम्मद सिंह आजाद' था। उनका बचपन का नाम शेर सिंह था।

सरदार ऊधम सिंह के जीवन से अनेक रोमांचकारी घटनाएं जुड़ी हैं। उनका धैर्य, पराक्रम, साहस और नीति-कौशल सर्वविदित है। ओ 'डायर की सरेशाम-सरेआम गोली मार कर हत्या, वह भी

उसके देश ब्रिटेन के कैक्सटन हॉल में सरदार ऊधम सिंह की प्रतिज्ञा का अप्रतिम प्रमाण रहा। ३१ मार्च १९४० की शाम थी। लंदन के कैक्सटन हॉल में सभा हो रही थी, जिसमें ओ 'डायर जलियांवाला बाग-कांड कराने के लिए अपनी शेखी बंधार रहा था। उसने भारतीय जनता के खिलाफ अनाप-शनाप बकना शुरू किया। सरदार ऊधम सिंह ने अपने रिवाल्वर की गोलियां उसके सीने में उतार कर उसे वहीं हमेशा के लिए ठंडा कर दिया। वे अपना लक्ष्य पूरा कर चुके थे। वहां से टम से मस नहीं हुए।

अन्य क्रांतिकारियों की तरह सरदार ऊधम सिंह पर भी अंग्रेजों ने मुकदमा चलाने का नाटक करके उन्हें ३१ जुलाई १९४० को फांसी दे दी।

१३ जून १९४० को प्रातः काल सरदार ऊधम सिंह को फांसी घर की ओर ले जाया जा रहा था। उन्होंने उस समय अपने अंतिम शब्दों में उद्घोष करते हुए कहा था- "मैंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अत्याचार और अन्याय से पिसते भारतवासियों को देखा है। अमृतसर में माइकल ओ 'डायर ने जो कत्ल किये, वह मैंने सुने है। यह सब बातें सुन कर मैं ब्रिटिश साम्राज्य का कट्टर द्रोही बन गया। ओ 'डायर के काले कारनामों के लिए अगर मैं प्रतिशोध न लेता तो दुनिया में हिन्दुस्तान के नाम और उसके समुज्ज्वल इतिहास के लिए सदैव एक कलंक की बात रह जाती। दस-बीस लोगों की फांसी की मुझे कोई परवाह नहीं है, बुढ़ापे तक जीवित रहने से कोई लाभ नहीं है। जवानी में मर जाना ही सच्चा पुरुषार्थ है। मैं मातृ-भूमि के लिए अपना बलिदान कर रहा हूं।" सरदार

ऊधम सिंह का बलिदान स्वतंत्रता संग्राम का निर्णायक मोड़ साबित हुआ

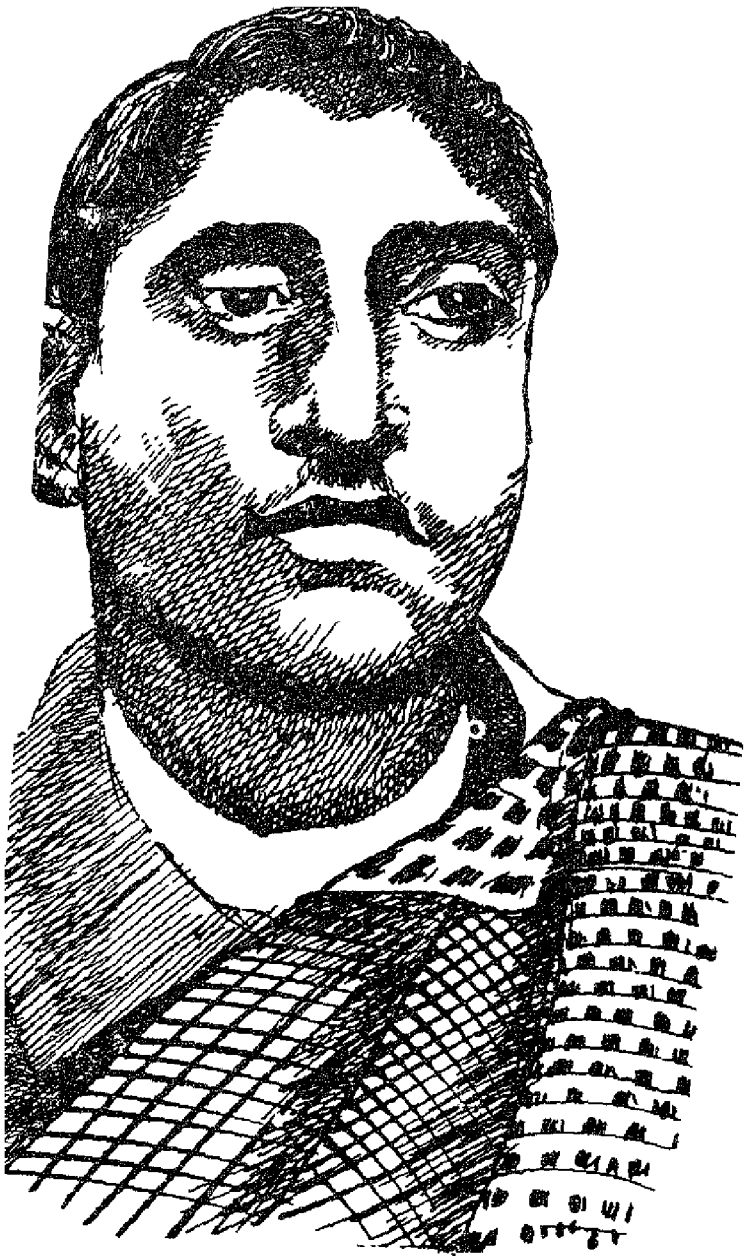
यह भी एक विडम्बना रही कि सरदार ऊधम सिंह को माइकल ओ 'डायर से बदला लेने में जहाँ बीस वर्ष लगे थे, वही स्वतंत्र भारत के हुक्मरानों को महान बलिदानी की आस्थियाँ स्वदेश लाने में चौँतीस वर्ष लग गये। सरदार ऊधम सिंह की अस्थियाँ जुलाई १९७४ में पंजाब के तत्कालीन मुख्यमंत्री ज्ञानी जैल सिंह और उनके साथियों के अथक प्रयास से भारत लायी गयीं। वर्ष १९९९ में शहीद ऊधम सिंह की जन्म-शती मनायी गयी।



यतीन्द्रनाथ मुकर्जी

(वाघा जतीन)

विधि का विधान बड़ा अद्भुत है। यह रत्नगर्भा वसुन्धरा अक्षय रत्नों की खान है। वह अपने गर्भ से अब तक अनेक कितने रत्न उत्पन्न कर सकी है, इसका ज्ञान करना असम्भव है। प्रकृति की भारत-भूमि पर विशेष कृपा है। जहां हमारी यह भूमि उज्ज्वल रत्नों की खान रही है, वहां इससे नर-रत्नों की सृष्टि भी बराबर होती रही है। इस देश में वीरों की कमी कभी नहीं रही। हरिश्चन्द्र जैसे त्यागी, युधिष्ठिर जैसे धर्मात्मा, भीष्म जैसे ब्रह्मचारी, भीम जैसे बली, अर्जुन जैसे धनुर्धारी अभिमन्यु जैसे वीर बालक, शंकर जैसे विद्वान, बौद्ध जैसे वीतराग, राणाप्रताप जैसे स्वतन्त्रता-प्रिय, वीर शिवाजी जैसे बहादुर, गुरु गोविंद जैसे रणधीर, बन्दा जैसे स्वामिभक्त इस भूमि को अपने गुणों से अलंकृत कर गये हैं। इसके बाद भी अनेक वीर निःस्वार्थ भाव से भारत की परतन्त्रता की शृंखला को तोड़ने के लिए फ्रांसी के झूले पर हंसते-हंसते झूल गये। अमेरिका को यदि वाशिंगटन; फ्रांस को नैपोलियन, इटली को गैरबाल्डी और इंग्लैण्ड को नेल्सन पर अभिमान हो सकता है तो भारत मां के चरणों पर अपने को बलिदान करने वाले वीरों का अभिमान भारत को है।



यतीन्द्रनाथ मुकर्जी

सब मनुष्यों में सब प्रकार के गुण और शक्तियाँ समान रूप से नही हुई करती हैं। परन्तु प्रत्येक गुण से मनुष्य समाज, देश और जाति का उपकार एवं यश प्राप्त कर सकता है। जिनमें सभी प्रकार के गुणों का सम्मिश्रण होता है, वे महापुरुष कहलाते हैं। समाज की वे विभूति हैं। देश और समाज उन पर गर्व कर सकता है। हमारे यतीन्द्र बाबू इसी प्रकार के महान पुरुष थे।

विप्लव-युग के श्रेष्ठ कार्यकर्ताओं में बंग प्रान्त के तत्कालीन सुप्रसिद्ध नेता श्री यतीन्द्रनाथ मुकर्जी का नाम यदि सर्वोपरि रखा जाय तो कदाचित् अनुचित न होगा। बंगाल प्रान्त में उस समय क्रांति की अग्नि प्रज्वलित हो चुकी थी। बहुत से नवयुवक उसमें अपने प्राणों की आहुति दे चुके थे। काम भी जोरों पर हो रहा था किन्तु कोई संगठन न था। इस कारण शक्ति का दुरुपयोग हो रहा था। उस शक्ति को केन्द्रित करने के लिए एक असाधारण पुरुष की आवश्यकता थी। जो इस प्रकार का काम करते हैं वे उस युग के प्राण-स्वरूप होते हैं। यतीन्द्र बाबू भी उस समय के आन्दोलन के प्राण-स्वरूप थे। उन्होंने अपनी अलौकिक प्रतिभा एवं अदम्य शक्ति से विभिन्न दलों पर अपना प्रभुत्व जमा लिया था।

यतीन्द्र बाबू का जन्म बंगाल प्रांत के नदिया जिले के काला नामक गांव में सन् १८७८ ई० में हुआ था। पांच वर्ष की उम्र में ही उनके पिता उमेश चन्द्र का स्वर्गवास हो गया। पितृ-सुख से वे वंचित हो गये। उनके पालन-पोषण का भार उनकी स्नेहमयी माता पर आ पड़ा। माता शरद शशि उनका अत्यंत लाड़-प्यार से पालन करती थी और अपनी शक्ति भर उनको किसी प्रकार का कष्ट न होने देती थीं। माता की हार्दिक इच्छा थी कि यतीन्द्र बाबू एक सुयोग्य बालक हों, सुयोग्य बनने के लिए उनकी माता ने अधिक

परिश्रम किया। वे नहीं चाहती थी कि मरा पुत्र कायर या गुलाम हो वे अपने पुत्र को सदा उपदेश देती रहती थीं—हे पुत्र ! संसार में सदैव निर्भय होकर विचरना, संसार की मोह-माया में न फंसना, हमेशा अपने चरित्र-बल को बनाये रखना। यतीन्द्र बाबू पर उनके उपदेशों का बड़ा प्रभाव पड़ा और अन्त समय तक उनके जीवन में उनकी मां के उपदेशों का प्रतिबिम्ब झलकता रहा। उन्होंने अपना जीवन उत्सर्ग तक कर दिया, पर आदेश पालन न छोड़ा और देश पर मर मिटने वाले पुत्र कैसे होते हैं, इसको प्रत्यक्ष दिखला दिया।

यतीन्द्र की शिक्षा उनके मामा के घर पर ही हुई क्योंकि उनकी माता अपने भाई के पास ही रहती थीं। प्रारम्भिक शिक्षा होने के बाद यतीन्द्र बाबू ने स्कूल में नाम लिखाया और मैट्रिक पास करके एफ० ए० की शिक्षा प्राप्त की। बुद्धि तीव्र होने पर भी यतीन्द्र का मन वैसा पढ़ने में न लगता था जैसा कि खेलने-कूदने और लड़ने-झगड़ने में लगता था। उन्होंने अपनी रुचि के अनुकूल लाठी चलाना, तरह-तरह के व्यायाम करना आदि कामों को सीखा। वे बदन के फुर्तीले थे। घोड़े की सवारी उन्हें अत्यंत प्रिय थी। पैदल चलने का भी उन्हें खूब अभ्यास था। चलती हुई गाड़ी पर चढ़ जाना और उससे उतर पड़ना उनके बायें हाथ का खेल था। साइकिल पर ७०-७५ मील चढ़े चले जाना एक आसान बात थी। कुश्ती लड़ना, तैरना और घूमना उन्हें अच्छा लगता था। शरीर से भी हृष्ट-पुष्ट थे। बदन गठा हुआ, सुन्दर रोबीला और गौरवर्ण का था।

एक बार यतीन्द्र को एक खेल सूझा- वे जङ्गल में गये, अचानक उनसे एक चीते से भेट हो गई। वे डरे नहीं। किसी उपाय से जीवित चीते को पकड़ कर शहर में ले आये। जिसे देख कर

सब अवाक् रह गया। यतीन्द्र बाबू प्रायः इसी तरह के कामों में लगे रहते थे। उन्होंने पढ़ना छोड़ दिया। एक दिन माँ ने यतीन्द्र बाबू से कहा- बेटा, इस तरह कब तक जीवन-निर्वाह होगा। मैंने तुम्हें कितने कष्टों से पाला है। इस बुढ़ापे में भी मुझे चैन नहीं है; तुम मेरी तरफ कुछ ध्यान तक नहीं देते। तुम्हें कुछ कमाना चाहिए जिससे हमारा और तुम्हारा काम चल सके। माता की करुणा भरी बातों को सुन कर उनका हृदय पिघल गया और उन्होंने नौकरी करने की ठानी, किंतु नौकरी भी जल्दी कहां मिलती है। उन्होंने शार्टहैंड सीखना प्रारम्भ कर दिया। बुद्धिमान थे ही, कुछ ही समय में होशियार हो गये और कलकत्ता में एक दफ्तर में काम करने लगे। कुछ समय बाद वहां से मुजफ्फरपुर चले गये। वहां एक बैरिस्टर के यहां काम करने लगे। उसी समय उन्हें एक सरकारी नौकरी मिल गई और वे वहां से गवर्नर के आफिस में आ गये।

यतीन्द्र बाबू नौकरी तो करते रहे, परन्तु उनका हृदय उसके अनुकूल न था। उनके हृदय में तो स्वतन्त्रता की आग सुलग रही थी। वे कब तक उसे दबा सकते थे। नौकरी में रहते हुए भी वे इतने बेफिक्र थे कि उनको किसी बात की परवाह न थी।

सन् १९०५ की बात है। प्रिंस आफ वेल्स कलकत्ता की सड़कों पर से गुजरने वाला था। हजारों नर-नारी फुटपाथों पर जमा थे। एक नुक्कड़ पर एक बग्घी खड़ी थी, जिसमें कुछ महिलाएं थीं। प्रिंस आफ वेल्स के जुलूस की बढ़िया झांकी देखने को मिलेगी और उन औरतों को परेशान करने का मजा भी मिलेगा, यह सब सोच कर अचानक ही छः गोरे युवक बग्घी की छत पर चढ़ गये और औरतों के मुखों के आगे पांव लटका कर सीटियां बजाते हुए

बठ गये औरतो के साथ उनक रक्षक भा थ, मगर वे बेबस-से खड़े देखते रहे।

आग की लपट की तरह लपक कर जतीन बग्घी की छत पर पहुंचा और इससे पहले कि लोग कुछ समझ पाये कि क्या हो रहा है, वे छहों गोरे छैले सड़क पर चारो खाने चित पड़े थे। उन्होंने जतीन को पीटने की कोशिश की, मगर विफल रहे। अपमान का दूसरा घूंट पी वे भीड़ में मुंह छिपा कर भाग गये।

दो साल बाद जतीन रेल में रानीघाट जा रहा था। उन दिनो तीसरे दर्जे के डिब्बे लोहे के छड़ो से परस्पर अलग किये हुए होते थे। जतीन के पास वाले डिब्बे मे एक वृद्ध पुरुष अपनी बेटी के साथ यात्रा कर रहा था। दो गोरे उस डिब्बे मे चढ़े और डिब्बा हालांकि आधा खाली था, पर वे लड़की के अगल-बगल बैठ गये और दोनो और से उसे भीचने लगे। वृद्ध ने उनसे बहुत प्रार्थना की कि वे ऐसा न करे, और जब कोई असर न हुआ तो उसने दूसरे यात्रियों से अपील की कि वे उन्हे समझायें। मगर सबके-सब जड़वत् बैठे रहे।

बाधा जतीन अपने डिब्बे से ही गरज पड़ा। वह उठा, लोहे के छड़ों को हटा कर लपकता हुआ उस डिब्बे में आया और लगा दोनो गोरो को अपने कयामती घूसों का स्वाद चखाने। दोनो लुढ़क कर फर्श पर गिर पड़े। जतीन दोनों को अपने दोनों पैरों तले दबाये खड़ा हो गया और उन्हे तभी छोड़ा, जब दोनों ने लड़की और उसके पिता से क्षमा मांगी।

एक बार जतीन दार्जिलिंग जा रहा था। उसी ट्रेन मे चार अफसरों की देख-रेख में ब्रिटिश सैनिकों की एक टुकड़ी भी जा

रही थी। ये अफसर स्टेशनो पर प्लेटफार्मों पर ऐसे टहलते थे, जैसे 'नवाब के पड़पोते' हो। एक स्टेशन पर जतीन एक मरते हुए यात्री के लिए लोटा-भर पानी लेने को उतरा। पानी लिये वह दौड़ता हुआ वापस आ रहा था कि जरा-सा पानी छलक कर एक अफसर की पतलून पर गिर गया। फौरन गोरे अफसर ने अपनी छड़ी जतीन की पीठ पर बरसा दी।

जतीन ने एक बार मुड़ कर उसे देखा, मगर रुका नहीं, क्योंकि रोगी पानी के लिए तड़प रहा था। लेकिन अगले ही क्षण वापस पहुंच कर उसने उस अफसर की कलाई को अपनी वज्रमुष्टि में भीच लिया। छड़ी अफसर के हाथ से छूट गयी और दर्द से वह कराह उठा। दूसरे गोरों ने जतीन पर आक्रमण किया; मगर क्षण-भर में ही उनमें से हर-एक धूल में लोट रहा था।

बड़ा हो-हल्ला मचा। जतीन को गिरफ्तार किया गया। मगर पुलिस को उसे छोड़ देना पड़ा, क्योंकि पुलिस को उसने धमकाया कि मुझे रोकोगे, तो बहुत जरूरी सरकारी काम खतरे में पड़ जायेगा, जिसके लिए मैं दार्जिलिंग जा रहा हूं।

बाद में मुकदमा चला, तो शुरू में ही न्यायाधीश ने उन पीटे गये अफसरों से पूछा- 'तो आप चारों जने पीटे गये?' अफसर बोले- 'हां, श्रीमान्!' न्यायाधीश बड़ी देर तक चुप रहा, फिर दुबारा उसने पूछा- 'आपका मतलब है, आप चार हट्टे-कट्टे अंग्रेज सैनिक अफसर एक 'नेटिव के मुकाबले में बेकार साबित हुए?' वे हकला गये- 'मगर...' न्यायाधीश ने उन्हें नसीहत दी- 'जमाना बड़ा खराब है। क्या आप लोगों को नहीं लगता कि अगर यह मुकदमा जारी रखा गया, तो हमारे जो आदमी यहां हिन्दुस्तान में

ह उनका मनोबल बुरी तरह टूटेगा आर राष्ट्रवादिया को बल मिलेगा?’

बंगाल मे इस समय क्रांति करने वाले दो ही दल थे- इनमे से एक के मुखिया यतीन्द्र बाबू थे, दूसरे दल के दो भाग किये जा सकते हैं, एक बंगाल के बाहर काम करता था और दूसरे ने बंगाल के भीतर ही अपना कार्य-क्षेत्र बना रखा था। बंगाल के बाहर की कुल जिम्मेदारी रास बिहारी को दी गई, किंतु बंगाल के भीतर जो काम हो रहा था, उसका भार किसी एक व्यक्ति पर न था।

यतीन्द्र बाबू कलकत्ता के पथरिया घाट मुहल्ले में प्रायः रहा करते थे। वे एक दिन अपने मकान पर आये हुए थे, वहाँ और भी कई भागे हुए क्रांतिकारी थे। उसी समय एक परिचित आदमी आया। जिसके विषय में गुप्तचर होने का सन्देह हो चुका था। इसके आते ही बिना कुछ सोच-विचार के, बिना कुछ देखे-भाले एक आदमी ने उस पर गोली चला दी और सब भाग खड़े हुए। यद्यपि गोली चलाने वाले यतीन्द्र न थे, सर्वथा उससे दूर थे, पर मरने के समय गोली खाने वाले व्यक्ति ने यही इजहार बयान दिया कि यतीन्द्र ने मुझे गोली मारी है। अब तक पुलिस यतीन्द्र पर कड़ी दृष्टि अवश्य रखती थी, किंतु कोई ऐसा सबूत न था जिससे वह उन्हें पकड़ सकती। उस व्यक्ति का बयान क्या मिला, पुलिस को मनचाही मुराद मिली। पुलिस उनके फिराक में रहने लगी।

इस घटना के बाद यह निश्चय हुआ कि यतीन्द्र बाबू किसी ऐसे स्थान पर रखे जायें जहाँ कि वे सुरक्षित रह सकें। स्थान निश्चित हो गया। जब जाने का समय आया तो यतीन्द्र बाबू गद्गद् स्वर से बोले- भाई, हम लोग यह सौगंध लेकर जीवन-संग्राम में उतरे थे कि जीवन -मरण में सदैव साथ रहेंगे और

परस्पर एक दूसरे का विपत्ति में सर्वदा साथ देगे अपने साथिया को विपत्ति में छोड़ कर मैं अकेला बाहर जा सकूंगा, यह मुझसे न हो सकेगा। वहां जाकर मुझे सुख पूर्वक दिन व्यतीत करने की अपेक्षा यह कही सुख कर मालूम होता है कि मैं अपने सब साथियों के साथ भूख-प्यास से तड़प-तड़प कर मरूं। हम तो सिपाही है, जो हर समय मृत्यु की प्रतीक्षा में तैयार खड़े है, इसलिए सभी एक साथ रहना चाहते हैं, जिससे एक प्रभावशाली मुठभेड़ की जा सके। अंत में उनकी यही इच्छा पूर्ण हुई।

बालेश्वर के निकट यतीन्द्र बाबू अपने पांच साथियों के साथ एक अड्डा बना कर रहने लगे। पुलिस को उनके अड्डे का पता चल गया, उन्हें भी इसका पता लगा। पुलिस ने उन पर धावा मारा। वे यदि चाहते तो अपनी जान भाग कर बचा सकते थे, पर उनके उस समय दो साथी वहां मौजूद न थे और जैसा कि उनकी प्रतिज्ञा थी, वह उन्हें छोड़ कर अपनी जान बचाना नहीं चाहते थे। वे तो अपने साथियों के जीवन और अपने जीवन में कोई भेद न समझते थे। अस्तु, बहादुर यतीन्द्र रात ही में अपने शेष साथियों के सहित दूर घने जंगल में उन्हें लेने के लिए चल दिये। ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी रास्ता फिर अनजान मार्ग, अंधेरी रात, उसमें भी बारह मील जाकर वापस आना असम्भव कार्य था। इन सब बातों की परवाह न करके वे अपने काम में जुट गये। वे असाध्य साधने में प्रवृत्त तो हो गए, पर रात बीत गई। सबेरा हो गया। इस समय पुलिस का पूरा प्रबंध हो चुका था। गांव-गांव में, रास्तों-रास्तों पर पुलिस की चौकियां बैठ गई थीं। सबको जगह-जगह खबर कर दी गई थी कि एक भयंकर डाकुओं का दल उनके इलाके में छिपा हुआ है, जिसे पकड़ने या पकड़वा देने से काफी इनाम मिलेगा।

इससे गाव वाले भी सावधान हो गये।

यतीन्द्र बाबू अपने साथियो सहित चल दिये। इतने पर भी उन्होंने जरा सी भी हिम्मत न हारी। रात-दिन नदी-नालो को पार करते हुए थक गए थे, भूख भी सता रही थी। नदी पार करते समय एक मल्लाह से बोले-भाई ! इस समय तुम्हारे पास कुछ हो तो खिला कर हम लोगों के प्राणो की रक्षा करो, न हो तो थोड़ा भात ही बना दो, पर उस मल्लाह को तनिक भी दया नही आयी और न उसने अपनी हांडी तक दी कि वे चावल पका कर खा लेते। उसे तो यह समाया हुआ हुआ था कि कही इनका धर्म न चला जाय। वाह रे हिंदू जाति ! जिसमे चीटियां तक को भोजन दिया जाता है और उनके प्राणो की रक्षा की जाती है, उसने मनुष्यो के प्राणो की रक्षा करना अपना धर्म न समझा। मनुष्य के प्राण चले जायें, पर धर्म न जाय। उस मल्लाह ने अपने जन्म-जन्मांतर के संस्कारों की पूरी रक्षा की और उनको नरक जाने से बचाया। धन्य है ऐसे मनुष्य!

पुलिस पीछे लगी थी। ज्यों ही ये लोग एक गांव में पहुंचे, पुलिस ने धावा बोल दिया। सशस्त्र पुलिस जंगल के दोनो ओर से 'सर्च लाइट' फेंकती हुई यतीन्द्र को ढूंढ रही थी। इसी तरह सारी रात बीत गई। सबेरा होने को हुआ, अब क्या हो ही सकता था। आखिर यतीन्द्र ने भी रक्षा का कोई उपाय न देख अपने चारो साथियो सहित सैकड़ो सिपाहियों से मोर्चा लिया। यह दृश्य भी देखने योग्य था। कई दिनों के भूखे-प्यासे, थके-मांदे पांच बहादुर सैकड़ो सशस्त्र सिपाहियो से मोर्चा ले रहे थे । चारो ओर से धुआंधार गोलियां की बौछार हो रही थी। चारो दिशाएं कड़ाकड़ और धड़ाधड़ की घनघोर ध्वनि से गूंज उठी थी, आकाश-मण्डल

परस्पर एक दूसरे का विपत्ति में सर्वदा साथ देगे अपन साथियों को विपत्ति में छोड़ कर मैं अकेला बाहर जा सकूंगा, यह मुझसे न हो सकेगा। वहां जाकर मुझे सुख पूर्वक दिन व्यतीत करने की अपेक्षा यह कहीं सुख कर मालूम होता है कि मैं अपने सब साथियों के साथ भूख-प्यास से तड़प-तड़प कर मरूं। हम तो सिपाही हैं, जो हर समय मृत्यु की प्रतीक्षा में तैयार खड़े हैं, इसलिए सभी एक साथ रहना चाहते हैं, जिससे एक प्रभावशाली मुठभेड़ की जा सके। अंत में उनकी यही इच्छा पूर्ण हुई।

बालेश्वर के निकट यतीन्द्र बाबू अपने पांच साथियों के साथ एक अड्डा बना कर रहने लगे। पुलिस को उनके अड्डे का पता चल गया, उन्हें भी इसका पता लगा। पुलिस ने उन पर धावा मारा। वे यदि चाहते तो अपनी जान भाग कर बचा सकते थे, पर उनके उस समय दो साथी वहां मौजूद न थे और जैसा कि उनकी प्रतिज्ञा थी, वह उन्हें छोड़ कर अपनी जान बचाना नहीं चाहते थे। वे तो अपने साथियों के जीवन और अपने जीवन में कोई भेद न समझते थे। अस्तु, बहादुर यतीन्द्र रात ही में अपने शेष साथियों के सहित दूर घने जंगल में उन्हें लेने के लिए चल दिये। ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी रास्ता फिर अनजान मार्ग, अंधेरी रात, उसमें भी बारह मील जाकर वापस आना असम्भव कार्य था। इन सब बातों की परवाह न करके वे अपने काम में जुट गये। वे असाध्य साधने में प्रवृत्त तो हो गए, पर रात बीत गई। सबेरा हो गया। इस समय पुलिस का पूरा प्रबंध हो चुका था। गांव-गांव में, रास्तो-रास्तों पर पुलिस की चौकियां बैठ गई थीं। सबको जगह-जगह खबर कर दी गई थी कि एक भयंकर डाकुओं का दल उनके इलाके में छिपा हुआ है, जिसे पकड़ने या पकड़वा देने से काफी इनाम मिलेगा।

इसस गाव वाले भा सावधान हो गय

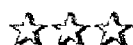
यतान्द्र बाबू अपन साथियो सहित चल दिये। इतने पर भा उन्होने जरा सी भी हिम्मत न हारी। रात-दिन नदी-नालो को पार करते हुए थक गए थे, भूख भी सता रही थी। नदी पार करते समय एक मल्लाह से बोले-भाई ! इस समय तुम्हारे पास कुछ हो तो खिला कर हम लोगो के प्राणों की रक्षा करो, न हो तो थोड़ा भात ही बना दो, पर उस मल्लाह को तनिक भी दया नहीं आयी और न उसने अपनी हांडी तक दी कि वे चावल पका कर खा लेते। उसे तो यह समाया हुआ हुआ था कि कही इनका धर्म न चला जाय। वाह रे हिदू जाति ! जिसमे चींटियां तक को भोजन दिया जाता है और उनके प्राणो की रक्षा की जाती है, उसने मनुष्यो के प्राणो की रक्षा करना अपना धर्म न समझा। मनुष्य के प्राण चले जायें, पर धर्म न जाय। उस मल्लाह ने अपने जन्म-जन्मांतर के संस्कारो की पूरी रक्षा की और उनको नरक जाने से बचाया। धन्य है ऐसे मनुष्य!

पुलिस पीछे लगी थी। ज्यों ही ये लोग एक गांव में पहुंचे, पुलिस ने धावा बोल दिया। सशस्त्र पुलिस जंगल के दोनों ओर से 'सर्च लाइट' फेकती हुई यतीन्द्र को ढूंढ़ रही थी। इसी तरह सारी रात बीत गई। सबेरा होने को हुआ, अब क्या हो ही सकता था। आखिर यतीन्द्र ने भी रक्षा का कोई उपाय न देख अपने चारो साथियो सहित सैकड़ों सिपाहियों से मोर्चा लिया। यह दृश्य भी देखने योग्य था। कई दिनों के भूखे-प्यासे, थके-मांदे पांच बहादुर सैकड़ों सशस्त्र सिपाहियो से मोर्चा ले रहे थे । चारो ओर से धुआंधार गोलियां की बौछार हो रही थी। चारो दिशाएं कड़ाकड़ और धड़ाधड़ की घनघोर ध्वनि से गूंज उठी थीं, आकाश-मण्डल

धूल से धूसरित हो रहा था। भयंकर जंगल में धांय-धांय के सिवाय कुछ सुनाई नहीं पड़ता था। पांच शेरों ने सैकड़ों के दांत खट्टे कर दिये। वे बेचारे कहां तक लड़ते, घन्टो तो लड़े। अन्त में एक गोली साथी चित्रप्रिय को लगी, वह सदा के लिए धराशायी हो गये।

यतीन्द्र भी काफी घायल हो चुके थे। जब उन्होंने देखा कि मेरा भी अन्त है तो शेष तीन साथियों को बड़े आग्रह-पूर्वक आत्म-समर्पण करवा दिया। खुद तो मूर्छित होकर गिर पड़े। प्यास से गला सूख रहा था। क्षीण स्वर से 'पानी' का शब्द सुन कर पास ही पड़ा हुआ खून से सराबोर मनोरंजन सरोवर से पानी लेने चल दिया। यह हालत देख कर पुलिस अफसर का हृदय भी पिघल गया। आंखों से आंसुओं की धारा बह चली। मनोरंजन को रोक कर वह स्वयं तालाब से पानी भर कर ले आया। उस समय वहां कोई बर्तन न था। पुलिस को अपनी टोपा में पानी लाना पड़ा था। पानी लाकर यतीन्द्र के मुख में छोड़ा गया। गले में पानी पहुंचते ही यतीन्द्र को कुछ चेत हुआ। पुलिस अफसर को सामने देख कर यतीन्द्र बोले, "इम मामले में कुल उत्तरदायित्व मेरा है, इन मेरे साथियो ने केवल मेरे आदेश का पालन किया है।"

गिरफ्तार होने के बाद यतीन्द्र कटक के अस्पताल में रखे गये। उनका शरीर इतना क्षीण हो गया था कि उनमें कुछ भी शक्ति न थी। कुछ भी ही दिनों में १० सितंबर १९१५ को शरीर छोड़ वे सदा के लिए बन्धन से मुक्त हो गये। मनोरंजन और धीरेन्द्र देव को फांसी हो गई। ज्योतीन को आजन्म काला पानी हुआ, पर उन्हें भी शान्ति कहां थी? वह भी उन्हीं में जा मिले।



तरुण शहीद हेमू कलानी

‘भारतमाता की जय!’ और ‘इन्कलाब, जिंदाबाद !’ का उद्घोष करते हुए २१ जनवरी १९४३ को सक्कर (सिंध) की सेट्रल जेल में एक अठारह वर्षीय तरुण फांसी के तख्ते पर झूल गया। उसका नाम था हेमन कलानी, जिसे प्यार से लोग हेमू कह कर पुकारते थे। और उसका ‘अपराध’ था—भारत में शोषक ब्रिटिश राज का निर्भीक व सक्रिय विरोध।

हेमू कलानी का जन्म ११ मार्च १९२४ को पुराने सक्कर के विख्यात कलानी परिवार में हुआ था। वहीं सात वर्ष की आयु में उसे ए०वी०स्कूल में दाखिल किया गया। छठी कक्षा पास करने के बाद उसे न्यू सक्कर के तिलक म्युनिसिपल हाईस्कूल में भेजा गया। राष्ट्रीय चेतना के अंकुर तो उसमें पहले से ही थे, अब वह स्वतंत्रता-संग्राम में सक्रिय रूप में कूद पड़ा।

इस समय तक हेमू के मन में यह बात स्पष्ट हो चुकी थी कि स्वस्थ शरीर में ही आत्मा का वास हो सकता है। अतः वह अपने शरीर को बलवान बनाने में पूरी तरह से जुट गया। पुराने सक्कर के कृष्णमंडल जिमखाने में वह कसरत करता था। कबड्डी, कुश्ती और तैराकी की प्रतियोगिताओं में उसने अनेक पुरस्कार जीते थे। सिंधु नदी का पाट कम-से-कम समय में तैर कर पार करने में तो उसने रिकार्ड कायम किया था।



हेमू कलानी

उन दिनों 'स्वराज्य मंडल' नामक गुप्त संस्था की बड़ी धाक थी, जिसके सूत्रधार और पथ-प्रदर्शक थे डा० मंधाराम कलानी। इस संस्था का लक्ष्य था—भारत में ब्रिटिश राज का अंत करना। स्वराज्य मंडल की ही विद्यार्थी-शाखा थी 'स्वराज्य सेना' और हेमू इसका नेता बन गया।

ऊंची और मजबूत काठी और आकर्षक चेहरे-मोहरे वाले हेमू के आदर्श-पुरुष थे-शहीदे-आजम भगत सिंह। एकांत में वह शहीदे-आजम की भाव-भंगिमाओं का अभ्यास करता रहता था। अक्सर वह अपने गले में फंदा डाल कर कुछ महसूस करने की कोशिश करता था। कभी कोई ऐसा करते देख कर सवाल कर बैठता, तो कहता- 'मुझे यही पसंद है। मैं अपने देश की खातिर फांसी पर लटक जाना चाहता हूँ।'

बंबई में ८ अगस्त १९४२ को कांग्रेस के अधिवेशन में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पारित हुआ। ९ अगस्त १९४२ की भोर यह खबर लेकर आयी कि महात्मा गांधी, पं० जवाहर लाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, मौलाना आजाद तथा दूसरे चोटी के नेता गिरफ्तार कर लिये गये हैं। आंदोलन की बागडोर जयप्रकाश नारायण, डा० राममनोहर लोहिया, अच्युत पटवर्धन और श्रीमती अरुणा आसफ अली जैसे युवा नेताओं ने संभाल ली और पूरे देश में क्षोभ और उत्तेजना की लहरे दौड़ गयीं। सिंध प्रांत भी इससे अछूता न रहा।

अक्टूबर की २३ तारीख को, जबकि 'भारत छोड़ो'- आंदोलन अपने शिखर पर था, हेमू को पता चला कि दमन के लिए अस्त्र-शस्त्र लेकर एक सैनिक रेलगाड़ी सक्कर आ रही है। उसने दो

दोस्तों का साथ लिया और जा पहुंचा पुराने सक्कर की नगर-सीमा के बाहर रेल की पटरियां उखाड़ कर सैनिक रेलगाड़ी को नष्ट करने के लिए। लेकिन ये तीनों किशोर अभी मुश्किल से ही पटरियों की कोई फिशप्नेट उखाड़ पाये थे कि हथौड़ों की आवाज सुन कर पुलिस दौड़ आयी। हेमू ने दोनों दोस्तों से कहा कि सभी के गिरफ्तार होने का कोई मतलब नहीं; तुम दोनों भाग निकलो ! दोस्तों ने उसकी बात मान ली। हेमू गिरफ्तार हो गया।

गिरफ्तारी के बाद की हेमू की कहानी चरित्र-बल, निष्ठा और दृढ़ता का एक अनूठा उदाहरण है। उसने सारा अपराध अपने सिर ले लिया। पुलिस ने उसे अकथनीय यंत्रणाएं दी, मगर अपने दोस्तों का नाम उसने अपनी जबान पर न आने दिया। न पुलिस उससे स्वराज्य-सेना और स्वराज्य-मंडल के बारे में ही एक भी शब्द उगलवा सकी।

फिर शुरू हुआ अदालती कार्रवाई का स्वांग। उस पर सैनिक अदालत में मुकद्दमा चला। उसने अपनी पैरवी के लिए कोई भी वकील रखने से साफ इन्कार कर दिया हालांकि सरकार और सक्कर पंचायत ने मिल कर जैसे-तैसे एक वकील उसकी तरफ से खड़ा किया जरूर।

जिरह के दौरान हेमू ने अपूर्व शौर्य दर्शाते हुए, तिलक की भांति न्यायाधीश के सामने कहा कि अंग्रेजों की गुलामी और दमन के विरुद्ध लड़ना मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और इसके लिए मैंने जो भी किया है, उस पर मुझे गर्व है; मुझे दुःख केवल यह है कि सैनिक रेलगाड़ी को नष्ट करने का जो काम मैंने हाथ में लिया था, वह पूरा न हो सका। उसने दावा किया कि अंग्रेज सेना अगर

अस्त्र-शस्त्र की मदद से स्वतंत्रता-संग्राम को कुचल सकती है, तो मुझे भी उस सेना के अस्त्र-शस्त्र नष्ट करने का निश्चय ही अधिकार है। सैनिक अदालत ने उसे आजीवन कारावास का दंड सुनाया था मगर हैदराबाद (सिंध) स्थित सैनिक मुख्यालय ने, जिसका कमांडर था लार्ड रिचर्डसन, इस दंड को मृत्युदंड में बदल दिया।

मृत्युदंड पाने का समाचार सुनते ही हेमू खिल उठा। उसे बड़ा संतोष हुआ कि अब वह अपने आदर्श पुरुष शहीदे-आजम भगत सिंह की भांति प्राण त्याग सकेगा। बाहर सक्कर के साधुबेला आश्रम के स्वामी श्री १०८ हरनामदासजी, हैदराबाद के साधु टी० एल० बास्वानी, करांची के जमशेदजी मेहता और पुराने सक्कर के पीरजादा अब्दुल सत्तार जैसी सिंध की नामी हस्तियां उसका दंड कम या खत्म करवाने के लिए गवर्नर-जनरल लार्ड लिनलिथगो तक से अपील करती रही, मगर जेल के भीतर हेमू बेहद संतुष्ट और प्रसन्न था।

२१ जनवरी १९४३ को अचानक फरमान आया कि आज सक्कर की सेंट्रल जेल में हेमू को फांसी दे दी जाये। वह बेतरह मुस्कराता हुआ फांसी घर की ओर चला और रास्ते-भर नारे लगाता रहा-इन्कलाब, जिंदाबाद! ... भारत-माता की जय!

उसके गले में फंदा डालने से पहले उससे पूछा गया कि तुम्हारी आखिरी इच्छा क्या है। इस पर उसने फांसीघर में अपने आस-पास खड़े तमाम लोगो से कहा कि सब लोग मेरे साथ दोहरायें- 'भारत का झंडा, ऊंचा रहे!... यूनिथन जैक, मुर्दाबाद!'

और वहां खड़े जिला-मजिस्ट्रेट को भी मजबूरन उसके साथ ये नारे लगाने पड़े।



गेंदालाल दीक्षित

अन्य प्रान्तों की भांति संयुक्त प्रान्त को भी भारत मां के चरणों में बलिदान होने का सौभाग्य प्राप्त है। राम और कृष्ण की जन्मभूमि ने भी अनेक सुरभित सुमन मां के चरणों में सादर और सप्रेम समर्पित किए हैं। उन्हीं अमूल्य रत्नों में से एक खास रत्न पं० गेंदालाल दीक्षित भी थे। आपका जन्म आगरा जिले की बाह तहसील के मई नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम भोलानाथ दीक्षित था। इनकी मां दुर्भाग्य से- जब ये ३ वर्ष के ही थे- तभी मर गई थीं। हिन्दी मिडिल पास करके आप इटावा अंग्रेजी पढ़ने गये और वहां के हाई स्कूल में पढ़ते रहे। वहां से आगरा से ही आपने इन्ट्रेन्स की परीक्षा पास की। आगे पढ़ने की इच्छा रखते हुए भी आर्थिक-स्थिति ठीक न होने के कारण पढ़ना छोड़ना पड़ा और जीविका के लिए औरय्या के डी० ए० वी० स्कूल में पढ़ाने का कार्य करना पड़ा।

बङ्ग-भङ्ग के दिन थे। स्वदेशी आन्दोलन चल रहा था। इस आन्दोलन ने नवयुवकों में हलचल सी उत्पन्न कर दी थी। आप पर भी उसका प्रभाव पड़ा। लोकमान्य तिलक के तो आप अनन्य भक्त बन गये। महाराष्ट्र में उधर शिवाजी के उत्सव मनाने का आन्दोलन चल रहा था। आपने भी 'शिवाजी समिति' नामक संस्था कायम



गेंदालाल दीक्षित

का। इस समिति का काम नवयुवकों में देश-प्रेम उत्पन्न करना था। बंगाल के नवयुवकों को प्राणों की किञ्चित् मात्र भी चिन्ता न करते हुए, बम तथा रिवाल्वर का प्रयोग करते देख पं० गेंदालाल ने भी उसी नीति का अनुसरण करने का निश्चय किया, किन्तु उपयुक्त साधन प्राप्त न होने के कारण आपको अपने निश्चय से हटना पड़ा और नीति को त्याग देना ही आपने श्रेयस्कर समझा।

सङ्गठन और प्रचार के कार्य में आर्थिक-संकटों से विवश होकर आपको डाके डालने पड़े, इसके लिए आपने प्रसिद्ध-प्रसिद्ध डाकुओं का साथ किया। अपने स्वार्थ के लिए डाके डालने के आप विरोधी थे। आपके मत में देश-हित के लिए डाका डालना कोई दोष न था। आपके दल में अधिकतर अशिक्षित व्यक्ति थे, इसलिए आपको विशेष सफलता न मिली। कुछ दिन के लिए आप बम्बई चले गये। वहाँ से लौटने पर आपको कुछ शिक्षित नवयुवक मिले, जिनके मिलने से आपको यह आशा बंधी कि बंगाल की भांति यहाँ भी राज-विद्रोह समितियाँ स्थापित हो सकती हैं। आपने उन युवकों को अस्त्र-शस्त्र देकर उन्हें उसका प्रयोग भी सिखलाया। इसी बीच में एक युवक से आपकी भेंट हुई, जिन्हें समिति के लोग 'ब्रह्मचारी' के नाम से सम्बोधित करते थे। ब्रह्मचारी जी ने चम्बल और यमुना के बीच के जंगलों में रहने वाला डाकुओं को संगठित किया। वह ग्वालियर राज्य में डाके डालने लगे। इनका दल खूब बढ़ गया और धन भी खूब इकट्ठा हो गया। ब्रह्मचारी जी डाके डाल कर धन लाते थे। ग्वालियर राज्य की ओर से उनकी गिरफ्तारी का जी तोड़ प्रयत्न हो रहा था। ब्रह्मचारी के दल के एक आदमी को

लोभ देकर फोड़ा गया और ब्रह्मचारी को पकड़ने का आयोजन किया गया, उस नीच ने भी पकड़वाने का वचन दे दिया।

डाका डालने का एक स्थान निश्चय किया गया। वह स्थान इतनी दूर था कि वहां पहुंचने में दो दिन लगते थे। एक दिन जंगल में पड़ाव डालना था। साथ में ८० आदमी थे। राज्य का एक गुप्तचर इनमें आ मिला और जंगल में इनको टिका दिया। स्वयं भोजन लाने चला गया। थोड़ी देर बाद वह तार्जी-तार्जी पूड़ी ले आया। ब्रह्मचारी जी और उनका दल क्षुधा से पीड़ित था। यद्यपि ब्रह्मचारी कभी दूसरे का भोजन नहीं करते थे, किन्तु विवश होकर उनको उस दिन वह पूड़ियां खानी पड़ी। पूड़ियों के खाते ही जीभ ऐंठने लगी। उनको मालूम हो गया कि इस भोजन में विष मिला है। वह गुप्तचर इनको पूड़ी खाते देख कर पानी लाने के बहाने चल दिया। ब्रह्मचारी जी ने पूड़ियों में जब विष होना अनुभव किया तो तुरन्त उस आदमी पर गोली चला दी। गोली की आवाज सुनते ही पुलिस के बहुत से सवार, जो उस जंगल में छिपे थे, आ धमके। परस्पर युद्ध आरम्भ हो गया और खूब गोलियां चलीं। जब तक इन लोगों को होश रहा, तब तक वे बड़ी वीरता से लड़े। ब्रह्मचारी और गेंदालाल दोनों आहत हो गये। इनके दल के ३५ लोग उस समय घायल हुए। ब्रह्मचारी, गेंदालाल तथा इनके अन्य साथी पकड़ कर ग्वालियर के किले में बन्द कर दिये गये।

गेंदालाल जी ने 'मातृवेदी' नाम की एक संस्था कायम की थी। उस संस्था के सदस्य ग्वालियर गये और अपने नेता को छुड़ाने का प्रयत्न करने लगे। संस्था के सदस्य महल देखने के

बहाने किले मे गये ओर पण्डित जी से मिले सब हाल जान कर निश्चय किया गया कि जैसे भी हो, पण्डित जी को छोड़ा जाय। किन्तु असावधानियों के कारण भेद खुल गया। गिरफ्तारियां शुरू हो गई। मामला बहुत बढ़ गया और मैनपुरी षड्यंत्र के नाम से कोर्ट मे अभियोग चला।

सरकारी गवाह सोमदेव ने पं० गेदालाल को इस षड्यंत्र का नेता बताया और ग्वालियर में उनके पकड़े जाने का हाल कह सुनाया। अस्तु, आप ग्वालियर से मैनपुरी लाये गये। किले में बन्द रहने तथा अच्छा भोजन न मिलने के कारण आपका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया। आप इतने दुर्बल हो गए थे कि स्टेशन से मैनपुरी जेल तक जाने में (केवल एक मील मे) आठ जगह बैठना पड़ा। आपको तपेदिक का रोग हो गया था। जेल पहुंचने पर आपको जेल सम्बन्धी सब समाचार मिले।

आपने पुलिस वालो से कहा कि तुम लोगों ने इन बच्चो को क्यो गिरफ्तार किया है। बंगाल और बम्बई के बहुत से क्रान्तिकारियो से मेरा सम्बन्ध है। मैं बहुतो को गिरफ्तार करवा सकता हूं। दिखाने के लिए दो-चार नाम भी बता दिये। पुलिस वालो को आशा हुई कि जेलो के कष्टो के कारण यह सारा हाल खोल देगा। यह अवश्य ही सरकारी गवाह बन जावेगा। अब क्या था, पण्डित जी सरकारी गवाह समझे जाने लगे। पुलिस आपकी आवभगत करने लगी। वे जेल में सरकारी गवाहों में रख दिये गये। एक दिन मालूम हुआ कि पं० गेंदालाल एक और सरकारी गवाह सहित गायब हैं। पुलिस ने बहुत सर मारा, परन्तु गेंदालाल का पता न लगा सकी।

प० गेदालाल वहां से भाग कर राम नारायण क साथ कोटा पहुंचे। वहां दुष्ट राम नारायण आपका सब सामान लेकर और एक कोठरी मे आपको बन्द करके चलता बना। तीन दिन तक बिना अन्न-जल के आप उस कोठरी में बन्द रहे और बड़ी कठिनाई से कोठरी से निकल कर पैदल चल कर आगरा पहुंचे। किन्तु दुर्भाग्यवश वहां भी आपको आश्रय न मिला। कही भी ठहरने का स्थान न मिलने पर विवश हो आप अपने घर चले गये। घर वालो को पुलिस ने बुरी तरह सता रखा था। आपको देख कर सब बड़े भयभीत हुए। घर वालों ने सोचा- पुलिस को बुला कर आपको गिरफ्तार करा दिया जाय। कैसी शोचनीय स्थिति थी, घरवाले भी देश के काम करने वाले को घृणा और भय की दृष्टि से देखते थे। पिता पुत्र को इसलिए घर में रहने देना नहीं चाहता था कि पुलिस आपको परेशान करेगी। आपने घर वालो की यह दशा देख कर कहा- 'आप घबड़ाइए नहीं, मैं बहुत शीघ्र ही आप लोगो के यहां से चला जाऊंगा।' अन्त में दो-तीन दिन बाद आपको अपना घर छोड़ना पड़ा। उस समय आपकी हालत इतनी कमजोर थी कि दस कदम चलने पर भी आपको मूर्च्छा आ जाती थी। जैसे-तैसे आप दिल्ली पहुंचे। वहां जीवन निर्वाह के लिए एक प्याऊ पर नौकरी कर ली। स्वास्थ्य दिनो-दिन बिगड़ रहा था। अपनी अवस्था का परिचय देते हुए आपने अपने एक सम्बन्धी को पत्र लिखा। पत्र पाते ही वह सज्जन आपकी पत्नी को साथ लेकर दिल्ली आ गये। बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी स्वास्थ्य मे कोई परिवर्तन न हुआ। दिनों-दिन स्वास्थ्य और खराब होता गया और आपको

घडा घड़ी पर मूर्च्छा आने लगा आपका पत्नी यह दशा देख कर फूट-फूट कर रोने लगी। उस समय का हृदय-विदारक दृश्य आपके आत्मीय से न देखा गया। वह बाहर आकर रोने लगे। पण्डित जी को जब होश आया और उन्होंने यह हालत देखी तो अपने सम्बन्धी को ढांढ़स देते हुए कहा कि तुम रोते क्यों हो। तुम लोग दुःख मत करो। यदि देश सेवा हेतु प्राण चले गये तो मैंने अपना कर्तव्य पालन किया। मुझे शान्ति के साथ अपना अन्तिम जीवन बिताने दो।

पत्नी को सम्बोधन करके पूछा- तुम क्यों रोती हो? पत्नी ने उत्तर दिया- प्राणनाथ ! आपके सिवाय मेरा इस संसार में कौन है? पण्डित जी ने एक ठण्डी सांस लेकर और मुस्कराते हुए कहा- 'आज लाखों विधवाओं का कौन है? लाखों अनाथों का कौन है? करोड़ों का कौन है? दासता की बेड़ियों में जकड़ी हुई भारत माता का कौन है? जो इन सब का मालिक है, वही तुम्हारा भी। तुम अपने को सौभाग्यवती समझो, यदि मेरे प्राण देश सेवा के निमित्त जाते हों। मुझे केवल इतना ही दुःख है कि मैं अत्याचारियों के अत्याचार का बदला न ले सका'। आपने फिर कहा- तुम्हारे पिता अभी जीवित है, भाई भी हैं और मेरे बहुत से कुटुम्बी तथा मित्र हैं, वे सब तुम्हारी मदद करेंगे। तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करो।

इसके पश्चात् आप फिर बेहोश हो गये, स्थिति बड़ी भयंकर हो गई थी। उनके सम्बन्धी ने सोचा कि यदि यहीं पर प्राणांत हो गया तो अन्तिम संस्कार भी करना कठिन हो जायगा। पुलिस को पता लग गया तो बड़ी मुसीबत का सामना करना होगा। इसलिए

उन्हे सरकारी अस्पताल मे भरती करा कर वे उनकी पत्नी को साथ ले कर चल दिये। लौट कर देखा तो पण्डित जी चुपचाप बिस्तर पर पड़े थे। उनका नश्वर शरीर संसार को त्याग चुका था। उस समय दिन के दो बजे थे और दिसम्बर सन् १९२० की २१वी तारीख थी।

जिस देश के लिए सर्वस्व त्यागा, सारे कष्ट सहे और प्राण तक दे दिये, उस देश के किसी ने यह भी न जाना कि पण्डित गेदालाल कहां विलीन हो गये। भारत की स्वतन्त्रता के इतिहास मे आपका नाम आदर के साथ अंकित होगा। आप भारत की निधि और इस प्रान्त के त्यागी, वीरात्मा और उज्ज्वल क्रांतिकारी पुरुष थे।



श्री विष्णु गणेश पिंगले

श्री पिंगले का जन्म पूना के एक पहाड़ी क्षेत्र में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री गणेश पिंगले था। यह महाराष्ट्र के थे। महाराष्ट्रीय जाति भी अपनी वीरता के लिए दक्षिण में प्रसिद्ध है। अतीत का इतिहास इनकी वीरता, साहस और बुद्धि का साक्ष्य है। उत्तरीय वीर भारतीयों की भांति दक्षिण के इस नवयुवक में भी क्रान्ति के भाव उत्पन्न हुए। देश-भक्ति और देश-प्रेम किसी जाति की निजी सम्पत्ति नहीं, यह तो सबकी वस्तु है। जो उसकी उपासना करता है वह उसी की हो जाती है।

विष्णु गणेश पिंगले को लोग संक्षेप में वी० जी० पिंगले के नाम से पुकारते थे। विष्णु गणेश पिंगले बचपन से ही बड़े फुर्तीले, तेज प्रकृति के तीक्ष्ण-बुद्धि बालक थे। बचपन में इन्होंने मराठी पढ़ी और उसके साथ-साथ संस्कृत भाषा का भी अभ्यास किया। इनके पिता बड़े धार्मिक प्रकृति के पुरुष थे। उनका प्रभाव इन पर पड़ा, और वे भी धार्मिकग्रन्थों को बड़ी रुचि के साथ पढ़ा करते थे और धार्मिक कथा-वार्ता में काफी समय दिया करते थे। इन्होंने बालकपन में ही पूरी गीता कण्ठस्थ कर ली थी। इससे पिंगले की बुद्धि प्रखरता का पता चल सकता है। गीता के अध्ययन का इन पर इतना प्रभाव पड़ा कि ये घर-बार छोड़ कर साधु बन गये थे।



श्री विष्णु गणेश पिंगले

यह नहीं कहा जा सकता था कि पिगले को सचमुच वैराग्य उत्पन्न हो गया था, किंतु इसमें सन्देह नहीं कि सांसारिक बातों में इनका मन न लगता था। साधु होकर पिगले घर से निकल पड़े। घर से निकल कर कुछ समय तक भारत के विभिन्न स्थानों में भ्रमण करते रहे। इस बीच में वे बहुत से तीर्थों में गये और तरह-तरह के लोगों से मिले। बुद्धिमान-विद्वान् थे ही। भ्रमण से ज्ञान परिपक्वता आ गई। कुछ समय इसी तरह भ्रमण करके घर लौट आये। इनके हृदय में इस तरह से जीवन-यापन करने के प्रति घृणा उत्पन्न हुई। इन्होंने अंग्रेजी का अभ्यास करना आरम्भ कर लिया।

मित्रों के सम्पर्क से इन्जिनियरिंग पढ़ने के लिए अमेरिका जाने की इच्छा उत्पन्न हुई। घर वालों के सामने जब यह प्रश्न आया तो उन लोगों ने भी अनुमति दे दी और किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न लगाया। पिगले घर वालों से बिदा लेकर अमेरिका के लिए चल दिए। अमेरिका पहुंच कर शिक्षा प्राप्त करने लगे।

इधर अमेरिका के भारतीयों में विप्लव की आग भड़क रही थी। वहां पर भी एक खासा विप्लववादियों का दल बन गया था। वे लोग जगह-जगह संगठन और प्रचार का काम कर रहे थे। पिगले का विप्लववादियों के साथ सम्बन्ध हो गया। पिगले का पवित्र हृदय क्षुब्ध हो उठा। उनके हृदय में क्रांति के विचार लहर मारने लगे। उन्होंने इससे सम्बन्धित तत्कालीन साहित्य का अध्ययन किया; देश की परिस्थिति का अध्ययन किया और वे जब भारत की अन्य स्वतन्त्र देशों से तुलना करने लगे, उनमें मानसिक क्षोभ रहने लगा। उन्हें भारत की परतंत्रता अखरने लगी और और

जावन भार मालूम होन लगा उन्होने निश्चय किया कि स्वदश चल कर विप्लव दल का संगठन करना चाहिए और भारत को गुलामी के बन्धन से मुक्त करना चाहिए। वे अमेरिका से चल दिये। वे सीधे बंगाल पहुंचे। वहां बंगाल के विप्लवी दल का पता लगाया। पंजाब के क्रांतिकारियों की परिस्थिति समझाई और दोनो दलो का सम्बन्ध स्थापित किया। वे रास बिहारी से मिले। उस समय उत्तरी भारत का संचालन-सूत्र रास बिहारी के ही हाथ मे था, और उन्ही द्वारा समस्त केन्द्रो को आवश्यक सामग्री पहुंचाई जाती थी। पिगले को पंजाब के लिए बम-गोलों की आवश्यकता थी। इसलिए रास बिहारी के दल से उनका सम्बन्ध जोड़ना अनिवार्य था।

शचीन्द्र नाथ सान्याल इधर पंजाब की स्थिति जानने के लिए और वहां की दशा का पूर्णरूप से अध्ययन करने के लिए यात्रा कर रहे थे। उस यात्रा मे शचीन्द्र की पिगले से भेट हुई। पिगले ने शचीन्द्र नाथ से पंजाब की सहायता करने को कहा- शचीन्द्र नाथ वचन देकर लौट आये, परन्तु निश्चित समय पर किसी के पंजाब से न आने के कारण सहायता न मिल सकी। पिगले के कारण पंजाब के विप्लव दल में एक प्रकार की जान सी आ गई। रास बिहारी और शचीन्द्र नाथ सान्याल को कुछ-कुछ आशा हो चुकी थी कि अब इस आंदोलन मे कुछ शक्ति है। पिगले के मिलने से शचीन्द्र नाथ को हार्दिक प्रसन्नता हुई थी। प्रथम परिचय में शचीन्द्र बड़े प्रभावित हुए थे। बात-बात मे वे गीता के श्लोक बोलते थे। उनका तेजस्वी मुख, उनका समुन्नत और बलिष्ठ

गौर शरार, उनकी विलक्षण तीक्ष्ण बुद्धि उनके साहस और उत्साह का प्रत्यक्ष परिचय दे रहे थे। उनको देखने से प्रतीत होता था कि इनके हाथों से बहुत कुछ काम हो सकेगा।

पिंगले बंगाल से लौट कर दो दिन काशी में ठहरे। वही यह निश्चय हुआ कि बम-गोले तो काफी मिल जायेंगे, पर उनके बनाने में खर्च होता है, इसलिए रुपये की आवश्यकता है। अतः पिंगले पंजाब जाकर सब हाल पता लगावे। पिंगले पंजाब पहुंचे। करतार सिंह, पृथ्वी सिंह आदि वहाँ के प्रमुख कार्यकर्ताओं से मिले और सप्ताह में वहाँ का सब समाचार जान कर लौट आये। चलते समय पंजाब के कार्यकर्ताओं ने पिंगले से कहा था कि जिस तरह भी हो, रास बिहारी को आप जरूर लेते आइयेगा ! काशी जाकर पिंगले ने रास बिहारी से अनुरोध किया कि आपको एक बार पंजाब चलना होगा। रास बिहारी तो पंजाब उस समय न जा सके, किंतु पिंगले और शचीन्द्र नाथ सान्याल ने पंजाब की यात्रा की। शचीन्द्र पंजाबी नहीं जानते थे किंतु पिंगले पंजाबी बोली से परिचित थे, क्योंकि अमेरिका में इनका पंजाबियों से बहुत साथ था। इन लोगों ने थोड़े समय वहाँ ठहर कर पंजाब को संगठित किया।

पिंगले दक्षिणी थे, किंतु अपनी कार्यक्षमता और साहस के बल पर पंजाब पर अपना नेतृत्व जमाये हुए थे। उस समय पंजाब विप्लव आंदोलन के प्राण-स्वरूप तरुण करतार सिंह और पिंगले ही थे। शचीन्द्र के काशी लौट आने पर और पूरी पंजाब की व्यवस्था समझाने पर रास बिहारी पंजाब गये। पंजाब में २१

फरवरी विप्लव का दिन पहले से ही निश्चित था। वह धीरे-धीरे समीप आने लगा। लोगों में अपूर्व उत्साह था। उस दिन की वाट बड़ी बेसब्री एवं उत्सुकता से जोही जा रही थी। सारा प्रबन्ध किया जा चुका था। काम बड़े जोरो पर था। भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक जोरो की क्रांति का आयोजन हो चुका था। परन्तु अदृष्ट को कौन जानता है, कौन जानता है कल क्या हो जायगा! देशद्रोहियों की काली करतूत से सारा प्रयत्न विफल हो गया। पुलिस के एक भेदिये ने सारा भण्डाफोड़ कर दिया। सबकी आशाओं पर पानी फिर गया। गिरफ्तारियों का बाजार गर्म हो गया।

करतार सिंह सीमा प्रान्त की ओर चल दिये और रास बिहारी तथा पिगले बनारस की ओर अपने बचाव की दृष्टि से चल दिए। रास्ते में पिगले के हृदय में अनेक भावनाएं उठने लगीं। वे पीछे हटना अपमान समझते थे। जीवन को विपत्तियों की भभकती आग में झोंक देना उनके लिए खेल था। वीर पुरुष यदि स्वयं कार्य में सफल नहीं होते तो दूसरों के लिए तो मार्ग अवश्य परिष्कृत कर जाते हैं। बनारस लौटते समय रास बिहारी के रोकने पर भी वे मेरठ में उतर पड़े और निश्चय किया कि विद्रोह करना चाहिए। मेरठ की छावनी में घुस पड़े और विद्रोह की आग भड़काने लगे।

विश्वासी आदमी को धोखा देना कौन बड़ा काम है? एक मुसलमान हवलदार जिसने पिगले को अपना काफी विश्वासपात्र बना लिया था, पिगले उसकी प्रत्येक बात का विश्वास करते थे। उसने इस कार्य में सहयोग देने की बहुत आशा दिखाई। विप्लव के लिए खूब उत्साह दिखाया और सहायता देने का वचन दिया,

पर किस यह मालूम था कि वह नारकीय उस वीर को फंसाने की चेष्टा में लगा हुआ है। पिंगले उसके कहने में आ गये। अवसर पाकर उसने पिंगले को पकड़वा दिया। जिस समय वे पकड़े गये, उस समय उनके पास बड़े भयंकर दस बम थे।

पिंगले पर मुकदमा चला। अदालत से फांसी की सजा मिली। १६ नवम्बर १९१५ ई० फांसी का दिन था। पिंगले से पूछा गया- 'क्या इच्छा है?' उत्तर मिला- 'दो मिनट प्रार्थना करना चाहता हूँ।' हथकड़ी खुल जाने पर हाथ जोड़कर ईश्वर से प्रार्थना की- 'भगवान आज हम जिस लिए जीवन की बलि चढ़ा रहे हैं, उसकी रक्षा का भार तुम पर है। एक यही इच्छा है कि 'भारत आज स्वतन्त्र हो' यह कहते ही उछल कर फांसी का फंदा खुद गले में डाल लिया और इस लोक से चल दियो।'

रौलट रिपोर्ट में लिखा था कि पिंगले के पास जो बम मिले थे, वे इतने भयंकर थे कि एक बम आधी छावनी को उड़ाने के लिए पर्याप्त था।

रास बिहारी ने अपनी डायरी में पिंगले की वीरता और साहस के बारे में स्मरण करते हुए लिखा था—'यदि मैं यह जान पाता कि पिंगले मुझे फिर न मिलेगा तो उसके लाख कहने पर भी उसे मेरठ न जाने देता। वह बड़ा बहादुर था और सदैव एक आज्ञाकारी सिपाही की भांति कार्य करता था।'

☆☆☆

